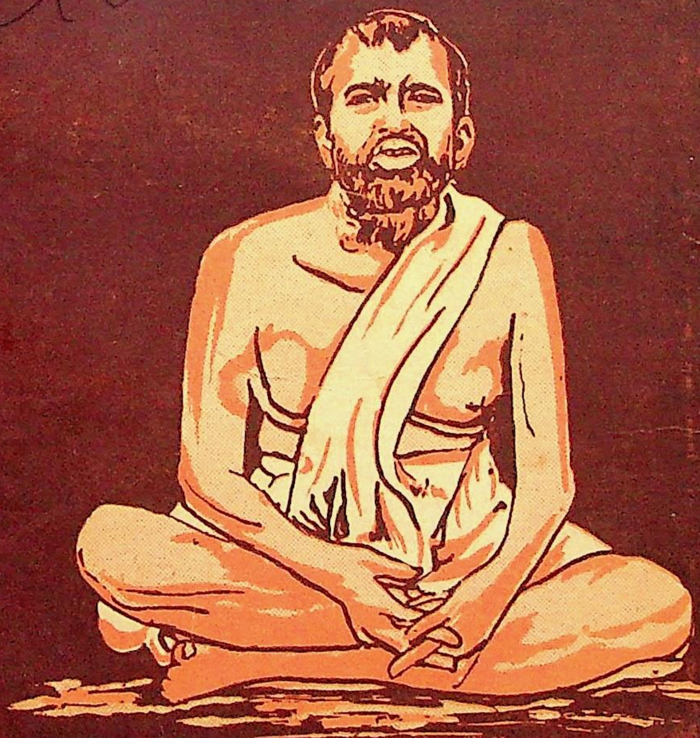
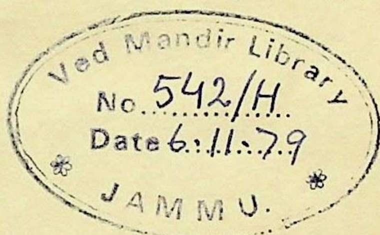
ष्ण उपनिषद

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य



रामकृष्ण उपनिषद

जीवनोपयोगी उपदेशों का
प्रेरक विवेचन



लेखक
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुवादिका
लक्ष्मी देवदास गांधी

१९७८



सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

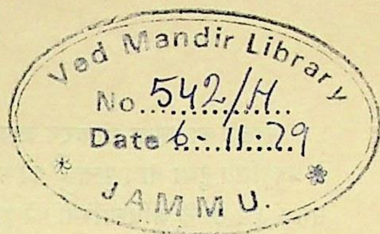
प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

•

पहली बार : १९७८
मूल्य : ३.५०

•

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२



प्रकाशकीय

'मंडल' से राजाजी का बहुत-सा साहित्य प्रकाशित हुआ है। उनकी 'महाभारत-कथा,' 'दशरथनंदन श्रीराम' 'कुब्जा सुन्दरी', 'भगवान हमारा मित्र,' आदि पुस्तकें तो इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि उनकी मांग बराबर बनी रहती है।

हमें हर्ष है कि विद्वान लेखक की एक और पुस्तक पाठकों के हाथों में पहुंच रही है। इस पुस्तक में उन्होंने श्री रामकृष्ण परमहंस के बिखरे हुए असंख्य उपदेश-रत्नों से उन चुने हुए रत्नों की व्याख्या की है, जो हमारे वर्तमान जीवन के नव-निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं।

मूल तमिल पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर राजाजी की सुपुत्री श्रीमती लक्ष्मी देवदास गांधी ने किया है, अनुवाद बोलचाल की सरल भाषा में है और इसे सामान्य पढ़े-लिखे व्यक्ति भी आसानी से समझ सकते हैं।

राजाजी के जीवन का अधिकांश भाग राजनीति में व्यतीत हुआ था; लेकिन मूलतः वह साहित्यिक थे। 'उनकी दृष्टि सदा मानव पर केन्द्रित रही। अतः उन्होंने अपने सम्पूर्ण साहित्य के द्वारा ऐसी सामग्री प्रदान की, जिसे पढ़कर मनुष्य अच्छा मनुष्य बन सके।

उनके लिए कला का महत्व था, लेकिन वह 'कला-कला के लिए' के उपासक नहीं थे। वह कला को जीवन के संदर्भ में देखते थे और ऐसे साहित्य की रचना करते थे, जिसे पढ़कर व्यक्ति जीवन के मर्म को समझे और तदनुकूल जीवन को ढालने का प्रयत्न करे।

इस पुस्तक के पीछे भी लेखक की वही दृष्टि है। इसमें उन्होंने उन विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है, जिनका हमारे दैनिक जीवन से गहरा संबंध है।

पुस्तक का पहला संस्करण आज से बहुत वर्ष पहले हिन्दुस्तान टाइम्स से प्रकाशित हुआ था। पुस्तक को पहली बार मंडल से प्रकाशित करते समय, हम उसके अधिकारियों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और श्रीमती लक्ष्मी देवदास गांधी का आभार मानते हैं, जिन्होंने पुस्तक को निकालने की हमें अनुमति प्रदान की।

पुस्तक बहुत ही मूल्यवान है। हमारा पूर्ण विश्वास है कि पाठक उसे चाव से पढ़ेंगे और इसका भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

इस साल (१९५०) के प्रारंभ में दिल्ली से मद्रास लौटने पर मैंने भगवान रामकृष्ण के उपदेशों पर 'कल्कि' नामक सचित्र साप्ताहिक पत्र में एक लेखमाला शुरू की। पहले कुछ संकोच जरूर हुआ, किन्तु मित्रों ने लेखमाला को पसन्द कर मुझे प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार भगवान् रामकृष्ण के उपदेशों को समझाने का जो सुयोग मुझे प्राप्त हुआ, उसे परमात्मा की कृपा ही मानता हूं।

इस उपदेश-व्याख्या के पैंतीस अध्याय 'कल्कि' में प्रति सप्ताह प्रकाशित हुए और लेखमाला दीपावली के दिन समाप्त हुई। वाद में मद्रास के श्रीरामकृष्ण मठवालों ने इसे पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया। मठवालों ने मेरी व्याख्या को पसन्द किया, यह भी मेरा सौभाग्य है। जैसा कि यमराज ने नचिकेता को वताया था, परमात्मा का दर्शन केवल शास्त्रों के पढ़ने से प्राप्त नहीं होता, न आत्मज्ञान की प्राप्ति बुद्धि, विद्या या तर्क-वितर्क से ही हो सकती है। इसके लिए परमात्मा की असीम कृपा चाहिए। भाव और भक्ति से ही ईश्वर-कृपा की पात्रता मिलती है। संस्कृत भाषा में प्रवीण हो जाना, शास्त्रों को पूरी तरह से पढ़ लेना, सैकड़ों श्लोकों को कंठस्थ कर लेना, आचार्यों के बराबर शास्त्रार्थ करने की शक्ति प्राप्त करना ये सब बातें संभव हैं, परन्तु धार्मिक तथा यौगिक जीवन व्यतीत करना दूसरी बात है। जिस मनुष्य के मन का पूर्णतया विकास न हो पाया हो, उसका पांडित्य और शास्त्र-प्रवचन निरर्थक है। जबतक मनुष्य को ज्ञान

का अनुभव न हो जाय, उसकी विद्या मदारी के खेल के समान महत्वहीन रहती है। उसमें गूढ़ता नहीं आती। श्रीरामकृष्ण के उपदेश सच्चे ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं। बच्चे, प्रौढ़ सभी उनके उपदेशों को पढ़ें और लाभ उठावें।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुक्रम

□□

○

रामकृष्ण उपनिषद

•

विषय-प्रवेश

श्रीरामकृष्ण परमहंस के उपदेश उपनिषदों की श्रेणी में आ सकते हैं। पूर्व काल के ऋषि-मुनियों के ही समान यह तपोधन महात्मा हमारे समय में पैदा हुए। उन्होंने स्वयं कोई किताब नहीं लिखी और न व्याख्यान ही दिये, किन्तु एक शुद्ध संन्यासी-जीवन बिताकर संसार से विदा ली। परमहंस के जो शिष्य उनके उपदेशों को श्रद्धा और भक्ति के साथ सुना करते थे, उन्होंने ही बाद में उनको लिपिबद्ध किया।

पढ़े-लिखे लोगों को सुन्दर-से-सुन्दर लेख लिखने में कोई कठिनाई नहीं मालूम होती, लेकिन ऐसे लेख अक्सर प्रतिभाहीन होते हैं। श्रीरामकृष्ण ने जिस प्रकार अपने अन्दर परमात्मा का अनुभव किया, वैसे ही समस्त वस्तुओं में भी परमात्मा का साक्षात्कार किया। वह बहुत ही बड़े ज्ञानी थे। ऐसे ज्ञानी संसार में कभी-कभी ही अवतार लेते हैं।

हमें स्वतंत्रता तो प्राप्त हो गई है, किन्तु उसका पूरा लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि हम धर्मपथ को भी न छोड़ें। इसी में हमारा श्रेय है। आजकल लोग खुले तौर से नास्तिकवाद का अनुमोदन करते हैं तथा अपनेको बड़े बहादुर समझते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। इस ब्रह्माण्ड की तथा इसकी अनेक शक्तिशाली अद्‌भुत वस्तुओं की सृष्टि किसी एक अन्य महान् विभूति से ही हुई है, जिसके आदेश से सबकुछ नियमानुसार चल रहा है। उस महान् विभूति को समझना या समझाना सरल नहीं। वही परमेश्वर है, परमतत्त्व है। यह कहकर कि प्रकृति अपने ढंग से चलती है, किसी संचालक की आवश्यकता नहीं, ईश्वर की जगह प्रकृति की ही आराधना करने से कोई बात नहीं बनती।

क्या ईश्वर के अभाव का यही प्रमाण है कि हम उसे देख नहीं पाते? रात्रि के समय जिस नक्षत्र-समूह को हम देखते हैं, वह दिन में दिखाई नहीं देता। अतः इस कारण से कि अमुक वस्तु को हम आंखों से नहीं देख पाते, हमें इस निर्णय पर नहीं आ जाना चाहिए कि उसका अस्तित्व ही नहीं है।

हम अज्ञानमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, इसलिए परमात्मा को देख नहीं पाते। हम यह कहते न फिरें कि परमात्मा कोई नहीं है, उसकी आवश्यकता भी नहीं है।

एक बार श्रीरामकृष्ण ने कहा, "गांव से कोई शहर में आता है। शहर में पहुंचने पर अपनी गठरी किसी सुरक्षित जगह रख कर वाद में सैर करने को निकलता है। दिन भर खूब घूमघाम कर रात को नियत स्थान पर पहुंच जाता है और निश्चिन्त होकर सो जाता है। यदि शुरू ही में उसने आराम की जगह ढूंढ़ न ली होती तो रात को थके-हारे लौटने पर उसे वड़ी परेशानी होती। संसार के क्लेशों से थके हुए मन का आश्रय परमात्मा है। उस स्थान को अपने लिए ढूंढ़ कर रख लो, नहीं तो भटकते रहोगे। सांसारिक सुख-भोग के समय के खत्म होने पर अन्धकार छा जायगा, तव तुम्हें आश्रय-स्थान की जरूरत होगी।"

तालाव से हम पीने के लिए घड़े में पानी भरते हैं। पानी को अधिक हिलाए विना धीरे-से भर लें तो घड़े में शुद्ध पानी आयगा, बहुत हिला-हिला कर झटके के साथ भरें तो कीचड़वाला पानी आयगा। नाना प्रकार के ग्रन्थों को पढ़कर, वातें सुनकर, हमें अपनी बुद्धि को कलुषित और शंका-मय नहीं वनाना चाहिए। मन को पवित्र रखकर अविचल भक्ति, ध्यान और उपासना धीरे-धीरे भी करते जायं तो हम उचित मार्ग पर चल सकते हैं। तालाब की तरह हमारी वुद्धि भी अधिक न चलाने पर ही स्वच्छ रहती है, नहीं तो कीचड़ जैसी ही हो जाती है।

ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते हो तो भक्ति और आतुरता रखो। जीवात्मा और परमात्मा के तत्वों की चर्चामात्र से भगवान् को नहीं देख पाओगे। सभी जानते हैं कि दही में मक्खन है। वह धीरज के साथ मथने पर ही मिलता है, न कि यह रटने और चिल्लाने से कि दही में मक्खन है, मैं जानता हूं। भगवान को पाने की इच्छा उतनी ही आतुरता के साथ रखो, जितनी आतुरता के साथ बालक बहुत देर से बिछुड़ी हुई मां की गोद में जाने के लिए लालायित रहता है।

१ / विविध धर्म

"ईश्वर की उपासना के अनेक मार्ग हैं । जैसे नदी में उतरने के लिए कई घाट होते हैं, वैसे ही आनन्द-सागर परमात्मा के पास पहुंचने क लिए भी कई घाट हैं। इनमें से किसी भी एक घाट से उतरकर हम आराम से उस सागर में नहा सकते हैं। शुद्ध अंत:करण से और श्रद्धा-भक्ति के साथ पालन किया हुआ कोई भी धर्म हमें परमात्मा के पास पहुंचा सकता है । जीने से या बांस की सीढ़ी से, अथवा रस्से के सहारे भी छत के ऊपर चढ़ा जा सकता है। मार्ग नाना प्रकार के होने पर भी हम लक्ष्य पर पहुंच ही जाते हैं। जितने अलग-अलग धर्म हैं, वे सभी परमात्मा के पास पहुंचने की वीथियां हैं। इसलिए सब अपने-अपने धर्म के अनुसार ईश्वरोपासना करें । ईसाई लोग ख़्रिस्ती ढंग से, मुसलमान इस्लामी ढंग से और हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार भगवान् की उपासना करें । इसीमें भलाई है। सच्चे भक्त इतर धर्मावलम्बियों का कभी अनादर नहीं करते ।"

यह सदुपदेश श्रीरामकृष्ण परमहंस ने आज से सौ बरस पहले दिया था । दो हजार वर्ष पूर्व सम्राट् अशोक ने भी शिलाओं पर ऐसा ही लिखवाया था—"देवप्रिय प्रियदर्शन सम्राट् सभी भिक्षुओं और सभी गृहस्थों का सम्मान करते हैं; सभी धर्मावलम्बियों को समान दृष्टि से दानादि देकर सन्तुष्ट करते हैं। महाराज यही चाहते हैं कि सब अपने-अपने ढंग से आत्मज्ञान बढ़ाएं, अपने धर्म का महत्त्व दिखाने के लिए दूसरे

धर्मों का कभी अपमान न करें, बल्कि उनके प्रति आदरभाव दिखलाएं। इससे दूसरों को लाभ पहुंचता है और इसी में अपना भी गौरव है। अन्य धर्मों की अवहेलना करने से स्वधर्म की ही हानि होती है। दूसरों की निन्दा करने से कोई अपना मान नहीं बढ़ा सकता। इसलिए सब-कोई अपने-अपने धर्म का भली भांति अध्ययन करें और भक्ति-भाव बढ़ाएं। सम्राट् प्रियदर्शन अशोक की सभी से यही प्रार्थना है। सभी इन विचारों का प्रचार करें।"

हजारों वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने भी इसी प्रकार का उपदेश लोगों को गीता द्वारा दिया था। सम्राट् अशोक के बाद श्रीरामकृष्ण ने और उनके बाद हमारे ही जीवन-काल में हमारे मार्गदर्शक महात्मा गांधी ने भी हमें बारबार यही सिखलाया। इन महात्माओं की आज्ञा के विरुद्ध हम क्यों चलें ?

दो लड़के गिरगिट के रंग के बारे में बहस करने लगे। एक ने कहा, "अच्छी तरह देख तो सही, वह तो लाल गिरगिट है। तू अन्धे की तरह बकता है। वह पीला कहां है ?"

दूसरे ने जवाब दिया, "चल, पागल ! अन्धा तू है। साफ नजर आता है, वह एकदम पीला है।"

बहस लड़ाई का रूप लेने लगी। इतने में एक बुढ़िया आई। उसने लड़ाई का कारण पूछा और बताया जाने पर वह खूब हंसी। बुढ़िया ने दोनों लड़कों को समझाया कि एक ही गिरगिट कई रंगों का दिखलाई देता है—कभी लाल, कभी पीला और कभी किसी और रंग का। उसके रंग का निर्णय

करने के लिए लड़ना पागलपन है।

इसी प्रकार भक्तजन परमात्मा को नाना रूप में देखते हैं। भगवान् का सच्चा रूप वितंडावादियों को कभी नहीं दिखाई दे सकता। अहंकार और दंभ के वश में होकर वे व्यर्थ चर्चाओं में समय बिताया करते हैं।

चार अन्धे भिखारी भीख मांगने गए। रास्ते में एक हाथी खड़ा था। सबने उसपर हाथ फेरा। महावत मसखरा था। उसने अंधों से पूछा, "क्यों, हाथी कैसा है?" पहले अंधे ने, जो हाथी के पैर पर हाथ फेर रहा था, कहा, "यह जानवर एक मोटा खम्भा-सा मालूम पड़ता है।"

"अरे जा, इसकी शकल पेड़ की डाल की तरह होगी।" हाथी की सूंड़ को स्पर्श करते हुए दूसरे अंधे ने कहा।

"मुझे तो यह एक बड़े पीपे की तरह मालूम होता है," तीसरा बोला, जिसका हाथ हाथी के पेट पर था।

हाथी के कानों को छूकर चौथे अंधे ने कहा, "तुम तीनों की बात गलत है। मुझे तो लगता है कि हाथी की शक्ल सूप की-सी है।"

यदि हम भगवान् के रूप के विषय में व्यर्थ चर्चा करें और लड़ने पर तैयार हो जायं तो बिलकुल अंधे ही बन जाते हैं। ○

२ / सांप के पास मत जाओ

एक महाजन परमहंस के पास आए और बोले, "स्वामीजी, मैंने अपनी सारी संपत्ति अपने कुटुम्बियों के नाम कर दी है। व्यापार से अब मेरा कोई सरोकार नहीं रहा। सुनते हैं, सब कुछ त्याग देने से भगवान् के दर्शन होते हैं। मैंने तो सबकुछ त्याग दिया है, किन्तु भगवद्दर्शन मुझको अबतक नहीं हुए। इसका क्या कारण है ?"

श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, "श्रीमान्, जिस बर्तन में बरसों तक तेल रहा हो उसमें से तेल की गंध ख़ूब मांजने पर भी आसानी से नहीं जाती। इसी प्रकार सांसारिक बंधनों से एकदम छूट जाना असंभव है। आपने अपनी सारी संपत्ति दूसरों को दे अवश्य दी है, परन्तु मन में वैराग्य का भाव एकदम आना आसान नहीं होता। पुरानी आसक्ति का थोड़ा-बहुत अंश रह ही जाता है।"

सारी जायदाद दूसरों के नाम लिख देने के कई कारण हो सकते हैं। चिन्ता से मुक्ति पाना एक कारण हो सकता है। जायदाद को छोड़ देने से ही कोई संन्यासी नहीं कहला सकता। माया-मोह-कामादि को मन से एकदम हटाकर भगवद्भक्ति करनी चाहिए। इसके बाद जो ज्ञान और वैराग्य प्राप्त होता है, वही असली होता है। यदि हम मन का विकास हुए बिना ही धन और संपत्ति का त्याग कर दें और फिर निरंतर उस छोड़े हुए धन का ही चिंतन करते रहें तथा उस चिंतन का दूसरों को

पता न चलने देने के लिए विविध प्रकार के ढोंग रचते रहें, तो इससे गृहस्थाश्रम ही कई गुना श्रेष्ठ होगा।

यदि हमें किसी ऐसे पुराने घर में रहना पड़े, जिसमें सांप, बिच्छू आदि विषैले जन्तुओं का भी वास हो, तो खूब सचेत होकर रहेंगे। इतनी ही सतर्कता धन और कामरूपी सर्प के प्रति भी रखनी चाहिए। जरा भी असावधानी करने पर सर्प कहीं से भी अचानक आकर काट सकता है। ईश्वर का सतत ध्यान करो। गांव के लोग जब कभी सांप को फन फैलाते देखते हैं तो नाग देवता से प्रार्थना करते हैं, जिससे कि वह वापस चले जायं। मन्त्रोच्चारण से सांप चला भी जाता है, किन्तु कामरूपी सांप से खेलना उचित नहीं। उससे दूर रहना चाहिए। मैं समझदार हूं, संयमी हूं, मेरा यह क्या कर सकता है, ऐसा कभी न सोचना चाहिए। सांप के निकट जाने से वह अवश्य डस लेगा।

एक और धनी पुरुष श्रीरामकृष्ण के पास गए। वह कहने लगे, "आपको निजी खर्च के लिए एक बड़ी रकम देना चाहता हूं। यह लीजिए 'चेक'।"

उस धनवान ने अपनी यह इच्छा अच्छे विचार से ही प्रकट की थी, किन्तु परमहंस ने उसको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा, "जी नहीं, आपसे इतना पैसा ले लूं तो बस उसी की चिंता में फंस जाऊंगा। मैं यह नहीं चाहता।"

धनवान ने फिर आग्रह करते हुए कहा, "यह दान मैं किसी सुपात्र को देना चाहता हूं। आप क्यों रोक रहे हैं?" यदि स्वयं अपने नहीं तो किसी ऐसे व्यक्ति के नाम मुझे यह

पैसा जमा कराने दीजिए, जो आपकी सेवा-शुश्रूषा करता रहता हो। आपको तो पैसे को छूने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। आप इनकार न करें। मेरे ऊपर कृपा करें।"

फिर भी श्रीरामकृष्ण नहीं माने। बोले, "मैं स्वयं आपका पैसा ले लूं अथवा आप जैसा कहते हैं, वैसा प्रबन्ध कर दूं, इसमें अन्तर क्या है ? सच छिप नहीं सकता। यदि मेरे उपयोग के लिए किसी दूसरे के पास पैसा रहे तो यह संभव नहीं कि मुझे उसके जमा-खर्च की चिन्ता न सतावे। आप स्वयं सोच सकते हैं। क्षमा करें।"

इन शब्दों में श्रीरामकृष्ण ने दान लेना अस्वीकार किया। परन्तु दानी महाशय भी जल्दी माननेवाले नहीं थे, बोले, "आप तो विरक्त पुरुष हैं, धीर हैं। आपको किसी प्रकार का डर क्योंकर हो ? आपने स्वयं कहा है कि सम्पत्ति और स्त्री-सौन्दर्य यदि अपने सामने समुद्र की तरह फैले हुए अपार दिखाई दें तब भी जिस मनुष्य का मन पवित्र हो, दृढ़ हो, वह उसमें कभी डूब नहीं सकता। तैल-बिन्दु की तरह वह ऊपर-ही-ऊपर रहेगा।"

श्रीरामकृष्ण हँस पड़े और बोले, "हां, आप ठीक कहते हैं, किन्तु बहुत समय तेल पानी के सम्पर्क में रहे तो स्वच्छ तेल में भी बदबू आने लग जायेगी।"

एकदम स्वच्छ मन की शक्ति अपार अवश्य होती है। ऐसा मन विपदाओं को रोक सकता है और अपने को जाल में फंसने से बचा सकता है, किन्तु विष-परीक्षा बहुत देर तक

नहीं करनी चाहिए। विवेकयुक्त पुरुष भी गलती कर बैठता है। वासनाओं से दूर रहने में ही लाभ है। यदि हम वासनाओं के पास इस ख्याल से जाते रहें कि देखें, हमारी शक्ति कितनी है; तो हम अवश्य फिसल पड़ेंगे। ◌

३ / चित्त-शुद्धि

कभी किसी सुन्दर स्त्री का सामना पड़े तो उस परमेश्वर-रूप देवी का ध्यान करना चाहिए, जिसे हम दुर्गा, भवानी, आदि नामों से पूजते हैं। उस सुन्दरी को लोकमाता का ही एक रूप समझकर यह सोचना चाहिए कि वह अवश्य देवी का अवतार है, अन्यथा उसमें ऐसा सौन्दर्य कैसे आ सकता है ? यह समझकर कि वही वात्सल्यमयी जननी प्रसन्न होकर दर्शन दे रही है, सामने खड़ी स्त्री को प्रणाम करो। उसके बाद मन में विकार का रहना असंभव है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस इसी युक्ति का प्रयोग करते थे। उनका यह उपदेश मन को काबू में रखने के लिए निस्सन्देह सर्वोत्तम साधन है।

स्त्री-मात्र से घृणा करना अनुचित है। स्त्रियों के बारे में बुरी-बुरी बातें कहना और उनका अपमान करना अवांछनीय है। क्या कभी माता की निन्दा की जा सकती है ? हम माता को गाली कैसे दे सकते हैं ? स्त्री तो देवी का अवतार होती है, जो सर्वव्यापी परमेश्वर का दूसरा रूप, महाशक्तिमयी, जगन्माता है। स्त्री की मुसकराहट स्वाभाविक होती है, मनमोहक होती है। वह वात्सल्य से प्रेरित होकर निकलती है। देवी को नमस्कार करो, काम का नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

परमहंस के इस सदुपदेश का पालन करें तो हम देखेंगे कि मन पवित्र होता जाता है।

किसी रूपवती को देखकर चित्त चंचल होने लगे तो अशोक वृक्ष के तले बैठी ध्यानमग्ना सीताजी का स्मरण करो। क्या राक्षस बन जाओगे ? अथवा, हनुमान से क्षमा मांगकर अपने मन का मैल हटाने का प्रयत्न करोगे ? स्त्री के रूप में जगन्माता आई है, वह तुम्हारी भक्ति चाहती है। तुम उसकी कृपा की मांग करो। इसके बदले यदि तुम अपने अन्दर काम-विकार उत्तेजित करने लगो तो तुम्हारे-जैसा मूर्ख कोई न होगा। मिथ्या को सत्य मानकर पतन के रास्ते पर मत जाओ।

मन के अन्दर अच्छे या बुरे की प्रेरणा से ही हम सब काम करते हैं। मन को दूषित रखकर हम अच्छे काम नहीं कर पायंगे। यह सोचकर कि मेरे मन की बात दूसरा थोड़े ही जान पायगा, मन को और भी कलंकित मत करो, नहीं तो तुम्हारे जीवन के समस्त कार्य इतने बिगड़ जायंगे कि तुम उन्हें ठीक नहीं कर पाओगे। उस कुएं में, जिससे गांव के लोग पीने का पानी लेते हैं, हम गन्दगी डालते रहें तो सारे गांव का स्वास्थ्य बिगड़ जाना निश्चित है। इसी प्रकार यह भी निश्चित है कि अशुद्ध विचार वाले का जीवन नष्ट हो जाता है।



दो मित्र योंही शहर की गलियों में टहल रहे थे। उन्हें कोई खास काम नहीं था। किसी घर में भागवत की कथा पढ़ी जा रही थी। वहां लोगों की भीड़ जमा हो रही थी। दोनों मित्र जब उधर से गुजरे तो एक ने कहा, "चलो, हम भी कथा सुनें।"

दूसरे को यह सलाह अच्छी न लगी। वह बोला, "मुझे कथा-पुराण में रुचि नहीं। ये लोग झूठ-मूठ कुछ-न-कुछ बकते

रहते हैं। वेश्या का घर पास ही है। चलो, आज की रात वहां मौज से काटें। एक रोज जरा दिल खुश कर लेंगे तो क्या बिगड़ेगा ?"

पहले मित्र को यह बात नहीं जंची। उसने वेश्या के घर जाने से इनकार कर दिया और वह कथा सुनने बैठ गया। दूसरा गणिका की खोज में चल दिया। एक के घर वह पहुंच भी गया, किन्तु उसका मन बहुत ही बेचैन रहा। वह बारबार यही सोचता रहा कि मैं भी भागवत सुनने रुक गया होता तो कितना अच्छा रहता। पास में चार आदमी बैठे ताश खेल रहे थे, लेकिन उसमें भी उसका मन नहीं लगा।

पहला मित्र, जो भागवत सुनने बैठ गया था, सारे समय यही सोचता रहा, "मैं अच्छा बेवकूफ बना, जो यहां रह गया। मेरा दोस्त इस समय कैसी मौज कर रहा होगा !" कथा में उसको जरा भी रस न मिला। उसका मन वेश्या के घर से हटा ही नहीं। उधर जो वेश्या के घर था, उसका मन हरिकथा की ओर खिंचा रहा।

अच्छे विचारों के कारण बुरी संगति में रहने पर भी वह पवित्र रहा, जबकि उसका मित्र कथा सुनता हुआ भी अपने बुरे विचारों के कारण पाप का संचय करता रहा।

खाना बनाने के लिए सभी बर्तन तुम्हारे पास होने पर भी यदि तुम स्वयं उठकर पकाने न लगो तो खाना कैसे तैयार होगा ? स्वयं प्रयत्न किए बिना कोई काम बन नहीं सकता। केवल उपदेशों को सुनने से कोई लाभ नहीं। भक्ति में खूब मन लगाओ। ○

४ / भक्ति-मार्ग

भगवान् रामकृष्ण अपने एक शिष्य को इस प्रकार समझाने लगे, "मैं तो तुम्हारे सामने ही बैठा हूं। अब यदि मैं अपने मुंह के सामने एक कपड़ा रख लूं तो तुम मुझे देख नहीं सकोगे। मैं छिप जाऊंगा, यद्यपि रहूंगा पहले जैसा तुम्हारे सम्मुख ही। परमेश्वर हम सबके अति निकट है। फिर भी अहंकार रूपी पर्दे की आड़ के कारण हम उसे देख नहीं पाते। आंखों के सामने का बड़ा पर्वत भी एक छोटे कपड़े के टुकड़े से छिप जाता है। अहंकार और गर्व को जबतक हम नहीं हटाते, परमेश्वर का साक्षात्कार नहीं हो सकता। 'अहं' को हटा लो तो भगवद्दर्शन साफ-साफ हो जाय।"

सब काम ईश्वर ही करता है। संसार में जो घटनाएं घटती हैं, वे सब उसी नटराज की लीला हैं। जो व्यक्ति यह समझ लेता है, वह ज्ञानवान् है और जीवन-मुक्त हो जाता है, अर्थात् शरीर न छोड़ते हुए भी बन्धनों से छूट जाता है। ज्ञानी पुरुष को शोक या भय का अनुभव नहीं होता।

ध्यान में लीन भक्त बार-बार कहता है, "प्रभो, तुम्हीं कर्त्ता, कारण, सबकुछ हो। मैं तो निमित्तमात्र हूं। सब वस्तुओं में तुम्हारी ही महिमा है। मुझसे यदि कोई काम बहुत अच्छा बन जाय तो उसका श्रेय तुम्हीं को है। यह घर, यह कुटुम्ब, सब तुम्हारे ही हैं। मैं तुम्हारा सेवक हूं। तुम्हारी सेवा में ही आनन्द है।"

इन बातों को बार-बार याद करके यदि हम भक्तिमय जीवन बितावें तो अहंकार का पर्दा उठ जायगा और सामने का दिव्य दृश्य साफ दिखाई देगा।

●

'मैं' के दो प्रकार हैं। एक में भक्ति की परिपक्वता होती है। "मैं ईश्वर का सेवक हूं। मेरी अपनी कोई चीज नहीं है। सबकुछ उसी का है। उसकी चाकरी में ही मेरी खुशी है"—इस प्रकार के विचार भक्त करता है। उसका जीवन भी ऐसा ही बन जाता है और उसका 'अहं' परिपक्व होने के कारण पके हुए फल की तरह अपने आप गिर जाता है। ऐसा भक्त जीते-जी मोक्ष पा जाता है।

दूसरे प्रकार का भी 'अहं' होता है, जैसे 'मेरा' घर, 'मेरी' पत्नी, 'मेरे' बच्चे, 'मेरा' शरीर इत्यादि। यह अहंकार कच्चे फल की तरह लगा रहता है, ईश्वर और हमारे बीच में एक मोटा पर्दा है। इसे हटाने से ही हम भगवान को देख सकते हैं। इसको हटाना सरल नहीं होता। शिक्षा और दर्शनशास्त्र का ज्ञान इसके लिए पर्याप्त नहीं। इस अहंकार को तो हम भक्ति से ही हटा सकते हैं। भक्त का 'मैं' बच्चों के अहंकार की तरह निर्दोष हुआ करता है। उसके 'अहं' में सेवक का भाव रहता है, जो भगवान के पास पहुंचने में मदद करता है। इसलिए भक्ति-मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है।

●

एक डिग्रीधारी डाक्टर एक मरीज बच्चे को देखने गया और बच्चे की मां से कहने लगा, "आप जरा भी चिन्ता न

करें। बच्चे के अच्छे हो जाने की जिम्मेदारी मेरी है।"

श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि चिकित्सक की ऐसी बातें सुनकर प्रभु हँस पड़ते हैं। किसी को बचाना या न बचाना, उनके हाथ में है। इसमें डाक्टर या वैद्य क्या कर सकता है ?

दो भाई अपने पूर्वजों की जमीन को आपस में बांटकर अलग हो जाने का निश्चय करते हैं और रस्सी से जमीन नाप-कर एक-दूसरे से कहते हैं, "देखो, यहां तक कि जमीन मेरी है, बाकी तुम्हारे हिस्से की है।" श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि जो मनुष्य सब प्रकार से पराधीन है, वह जब ऐसी बात करता है, तो उसे सुनकर परमेश्वर उसकी मूर्खता पर हंसे बिना कैसे रह सकता है ?

बरसों पहले पश्चिम में एक युवक संन्यासी संन्यासियों के मठ में रहने लगा। वहां उसका काम दूसरे संन्यासियों के लिए खाना बनाना, कपड़े धोना, बर्तन साफ करना, इत्यादि था। सेवा के ये सब काम वह बड़ी खुशी के साथ करता था, यह समझकर कि सबकुछ वह परमात्मा के लिए ही कर रहा है। वह अपने निकट सदा प्रभु के अस्तित्व का अनुभव करता था। उसे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे परमात्मा उसके साथ-साथ काम करता है, खेलता है, सोता-जागता है। वह संन्यासी प्रार्थना या जप के लिए अलग समय नहीं रखता था। उसकी भक्ति-परायणता देखकर दूसरे संन्यासी आश्चर्यचकित हो जाते थे। इस साधु पुरुष का नाम बंधु लारेंस था। इनकी जीवनी जब हम

पढ़ते हैं तो गोपियों की कथाओं और रामकृष्ण-चरित्र की याद आ जाती है। प्रत्येक काल में प्रत्येक देश में कोई-कोई महात्मा ऐसे हुआ करते हैं, जो जीते ही मोक्ष की अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, परमात्मा के सान्निध्य का अनुभव करते हैं। ○

५ | पाण्डित्य और आत्मज्ञान

एक पौराणिक पण्डित राजा के पास पहुंचे और राजमहल में कथा सुनाने की इच्छा प्रकट करते हुए बोले, "राजन्, भागवत एक अत्यन्त उत्तम ग्रंथ है। उसे आपको किसी आचार्य द्वारा अवश्य सुनना चाहिए। आपकी अनुमति हो तो पढ़कर सुनाऊं। सब जानते हैं कि मैंने धार्मिक ग्रंथों का सुचारु रूप से अध्ययन किया है। कृपा करके राजमहल में कथा सुनाने की मेरी इच्छा पूरी करें। विद्वानों का आदर-सत्कार करना राजाओं का धर्म है।"

राजा बुद्धिमान थे। समझ गए कि पण्डितजी को धन और नाम कमाने की अभिलाषा है, क्योंकि यदि वह पुराणों के गूढ़ार्थ को समझते होते तो राजद्वार पर क्यों आते? ईश्वर की आराधना में मग्न होकर जप-तप आदि में लीन न रहते?

उन्होंने पण्डितजी से कहा, "पण्डितजी, मैं आपसे भागवत अवश्य सुनना चाहता हूं; किन्तु एक प्रार्थना है। उस पुण्य-ग्रंथ को आप एक-दो बार और पढ़ लें। उसके बाद यहां पधारने की कृपा करें।"

पण्डितजी राजा की बात से कुछ खिन्न तो अवश्य हुए, किंतु राजा के प्रति वह क्रोध कैसे प्रकट करते? चुपचाप घर लौट गए और अपने मन में कहने लगे—"राजा मूर्ख मालूम पड़ता है। अनपढ़ और पढ़े-लिखे की इसे पहचान नहीं। कहता है कि एक-दो बार भागवत को और पढ़ लीजिए। मुझसे ऐसी

बातें करता है। जानता नहीं कि मैंने शास्त्रों को पढ़ने और समझने में ही बारह बरस बिताए हैं।"

घर पहुंचने पर पण्डितजी ने सारी बातें अपनी पत्नी को बताईं। पत्नी ने कहा, "वह तो राजा ठहरे; जो चाहें कह सकते हैं। और, जब उन्होंने कहा ही है तो क्यों न भागवत को एक बार और पढ़ लो और उसके बाद राजा के पास जाओ। राजमहल के मुख्य पौराणिक बनने का मौका व्यर्थ क्यों गंवाया जाय?"

पौराणिक को पत्नी की बात ठीक लगी। उन्होंने क्रोध को रोककर एक बार फिर भागवत को ध्यानपूर्वक पढ़ा और उस ग्रंथ के संबंध में पूछे जा सकनेवाले प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने में अपने को समर्थ बनाकर वह एक सुदिन देखकर राज-दरबार में पहुंचे।

राजा ने उनका अच्छा स्वागत किया। पूछा, "कहिए, अब तो आपने भागवत का खूब अध्ययन किया होगा?"

पण्डितजी ने उत्तर दिया, "अवश्य, महाराज की आज्ञानुसार मैंने भागवत को शुरू से अन्त तक खूब पढ़ लिया है। उसे मैं आपके दरबार में अच्छी तरह विस्तार से समझा सकता हूं। आपकी कीर्ति खूब बढ़े, आपके धार्मिक विचार भी खूब प्रगति करें, यह मेरी कामना है।"

राजा बोले, "श्रीमन्, मैं आपसे कथा निस्सन्देह सुनूंगा; बस, एक बार और उस ग्रंथ को पढ़ लें।"

ब्राह्मण बेचारे बहुत निराश हुए और घर जाकर उन्होंने पत्नी को सारा वृत्तांत सुनाया।

समझदार स्त्री ने कहा, "इसमें अवश्य कोई बात है। देखें, क्या होता है। एक बार और सही, भागवत का पुनः अध्ययन करके राजा के पास जाइए।"

पण्डितजी ने भी अपने यत्न को छोड़ा नहीं। यह सोचकर कि अध्ययन निर्विघ्नता और शांति के साथ सम्पन्न हो, उन्होंने अपने लिए एक एकान्त जगह पसन्द की। वहां वह खूब एकाग्रता के साथ अध्ययन करने लगे, यहां तक कि तन-मन की सुध भी भूल गए। इस बार उन्होंने भागवत में नए-नए अर्थ देखे। भगवान् नारायण की महिमा ने उनके चित्त को हर लिया। वह उसमें इतने रम-से गए कि घर भी नहीं जाते थे। भागवत के पठन में ही उनका सारा समय जाता था। अब उन्हें धन और नाम की इच्छा नहीं रही। वह यह भी भूल गए कि उन्हें राजा के पास जाना था।

ऐसी स्थिति देखकर ब्राह्मण-पत्नी बहुत परेशान हुई। सोचने लगी, "अब क्या होगा ? पति देवता को तो अब किसी बात की चिन्ता ही नहीं दिखाई देती, कुटुम्ब का निर्वाह कैसे होगा ?"

अंततः वह स्वयं राजा के पास गई और उनको उसने अपना सारा दुःख रोकर सुनाया।

अब राजा प्रसन्न होकर स्वयं ब्राह्मण के पास पहुंचे और उसके मुख पर अतुल तेज देखकर उन्होंने उसके चरणों पर शीश रखकर क्षमा मांगी।

पाण्डित्य एक चीज है और धर्मशास्त्र को पढ़ने के बाद जो भक्तियुक्त आत्मज्ञान मिलता है, वह बिलकुल दूसरी चीज है। ○

६ / नारीत्व और मातृत्व

जैसा कि 'चित्त-शुद्धि' के प्रकरण में बताया गया है, श्रीराम-कृष्ण परमहंस बारबार कहा करते थे कि नारी ईश्वररूप देवी होती है। स्त्री चाहे कोई भी हो और उसका चरित्र चाहे कैसा भी हो, उसके प्रति सदा यही भावना रखनी चाहिए कि वह माता है। नारी की निन्दा करने का किसी को अधिकार नहीं। जगन्माता के खेल को हम समझ नहीं पाते। कोई भी स्त्री हो, उसके लिए वैसी ही भावना रखो, जैसी मन्दिर में अलंकृत देवी के सामने खड़े होते समय रखते हो। नारी ईश्वर की ही जीती-जागती प्रतिमूर्ति है। उसे भक्ति के साथ प्रणाम करो। काम-विकार को इसी उपाय से रोका जा सकता है।

पति के साथ रहकर भी कोई-कोई स्त्रियां ब्रह्मचारिणी होती हैं। ऐसी स्त्रियों में भगवान् का अंश विशेष होता है।

एक शिष्य ने श्रीरामकृष्ण से पूछा—"तांत्रिक रूढ़ि में कुछ लोग स्त्रियों के साथ-साथ पूजा-पाठ करते हैं। इस विषय में आपका क्या मत है ?"

बंगाल में तथा अन्य प्रान्तों में भी कुछ लोग शाक्त सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। उनमें कुछ दुराचारी भी हुआ करते हैं। ऐसे ही लोगों को दृष्टि में रखते हुए यह प्रश्न पूछा गया था।

श्रीरामकृष्ण ने इसके उत्तर में यह चेतावनी दी, "इसमें खतरा है। सामान्य लोग इस ढंग का प्रयोग न करें। इसमें पतन की पूरी सम्भावना रहती है। तांत्रिक पद्धति में किसी

एक स्त्री को देवी मानकर उसकी पूजा करने के तीन तरीके बताये गए हैं। एक तो यह कि भक्त अपने को बालक समझकर पूजा करता है। दूसरा यह कि वह सखीरूप से पूजा करता है। इन दो में पहलेवाली अर्थात् बालक-वृत्ति की साधना ही श्रेष्ठ है। वैसे सखी-भाव भी बुरा नहीं है; किन्तु पूजा का तीसरा मार्ग, जिसमें देवी और भक्त के बीच नायक-नायिका की भावना विद्यमान रहती है, बहुत ही खतरनाक है। इसका अनुसरण ठीक नहीं।"

तांत्रिक पंथ में बताया गया है कि किसी लड़की या स्त्री को देवी मानकर उसकी पूजा समस्त विधियों के साथ उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार किसी मन्दिर में प्रतिष्ठित मूर्ति की की जाती है। परमहंस इसके भी विरुद्ध हैं। अपने अनुभव को सामने रखकर वह कहते हैं, "दो वर्ष मैंने तांत्रिक साधना की। सखी-भाव और वत्स-भाव दोनों का अभ्यास और प्रयोग किया। मेरे स्वभाव के लिए वत्स-भाव ही अनुकूल रहा। नायक-नायिकावाला प्रयोग मैंने किया ही नहीं। मैं तो कहूंगा कि यह प्रयोग सभी के लिए कठिन होगा। इसलिए यह सराहनीय नहीं।"

किसी ने उनसे पूछा, "आप अपनी पत्नी के साथ गृहस्थ-जीवन क्यों नहीं बिताते?"

इसका परमहंस ने यों उत्तर दिया, "मैं लाचार हूं। आपको एक किस्सा सुनाता हूं। एक रोज शिवजी के पुत्र गणेशजी ने अपने बचपन में एक बिल्ली को नोच लिया। जब वह अपनी मां पार्वती के पास गए तो उसके गाल पर भी उन्हें

उसी प्रकार की खरोंच दिखाई दी, जैसी बिल्ली को आई थी। बालक गणेश ने मां पार्वती से पूछा, "मां, तुम्हारे गाल में यह चोट कैसे आई ?"

मां ने उत्तर दिया, "बेटा, यह तो तेरा ही काम है; तूने नोचा जो था।"

"नहीं तो, मैंने तो आपको कुछ नहीं किया," गणेश ने कहा।

पार्वती ने पुत्र को स्मरण दिलाते हुए कहा, "भूल गए ? बेचारी बिल्ली को तुमने तंग नहीं किया था ? यह सारा विश्व मेरा शरीर है। हर किसी का दुःख मेरा अपना होता है।"

इसके बाद गणेशजी ने सबमें अपनी मां का ही रूप देखा। उन्होंने विवाह का भी विचार छोड़ दिया, "मुझे भी सब स्त्रियों में जगदम्बा ही दिखाई देती हैं !" ○

७ / ज्ञान का मूल भक्ति

ब्रह्मसमाज के सुविख्यात तत्त्ववेत्ता श्री केशवचन्द्र सेन एक बार भगवान् रामकृष्ण से मिलने दक्षिणेश्वर मन्दिर में गए। कुछ देर बात करने के बाद उन्होंने श्रीरामकृष्ण से कहा, "बात समझ में नहीं आती—लोग चाहे कितना ही पढ़े-लिखे क्यों न हों, फिर भीसांसारिक मायाजाल में फंसे रहते हैं। उनमें ज्ञान का उदय नहीं होता।"

श्रीरामकृष्ण बोले, "चीलें आकाश में बहुत ऊपर शुद्ध वायुमण्डल में उड़ती रहती हैं, किन्तु साथ-ही-साथ उनकी नजर नीचे पड़े हुए मृत प्राणी के मांस और हड्डी पर ही रहती है।"

चाहे हम कितने भी ऊंचे दर्जे की किताबें पढ़ें, मन तो माया के वश में आ जाता है। केवल विद्या से ज्ञान का संपादन नहीं हो सकता। नाना प्रकार के आशापाश ज्ञानमार्ग में रुकावटें डालते हैं। विद्या से हम भाषा का पांडित्य, शुद्ध उच्चारण और श्लोकों को धाराप्रवाह बोलना ही हासिल कर सकते हैं। हमारी इच्छाएं अपने स्वभाव के अनुसार हमें ऊंचा या नीचा ले जाती हैं। कामिनी-कांचन के वश में यदि आ जायं तो हम कितने ही बड़े पंडित क्यों न हों, किसी काम के नहीं रहेंगे। खूब पढ़-लिखकर कोई बड़े-बड़े व्याख्यान भले ही दे सकता है। ब्रह्म, परब्रह्म, ज्ञानयोग, भक्तियोग, मूल प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा आदि पारमार्थिक विषयों पर वाद-विवाद करके वह

श्रोताओं को चकित कर सकता है। किन्तु यदि हमारा मन भक्ति से द्रवीभूत होकर परमात्मा की तरफ न जाय तो यह सब पांडित्य व्यर्थ होगा। स, रे, ग, म, प, ध, नि, आदि स्वरों का उच्चारणमात्र किसी काम का नहीं होता; स्वरों के लय के साथ बोलने से ही संगीत बनता है। वैराग्य और ज्ञान के बारे में व्याख्यान देना आसान होता है। उसका अनुष्ठान अतीव कठिन है।



पंचांग में यह लिखा रहता है कि अमुक तिथि को वर्षा होगी। यह गणना ठीक भी निकल आती है, किन्तु पंचांग के पन्नों को फाड़कर निचोड़ने से कहीं वर्षा हो सकती है ? इसी प्रकार धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने से ही सन्तुष्ट न होकर हम उनमें बताई हुई बातों का पालन करने लगें, मन का संयम करें, तभी भक्ति की प्राप्ति हो सकती है।

ईश्वर के सम्मुख शिक्षित-अशिक्षित का भेदभाव नहीं होता। वहां तो अंधे भी देखते हैं और मूक भी बोल पड़ते हैं।

भंग को कूट-पीसकर लोग पीते हैं, तब नशा चढ़ता है। सैकड़ों बार भंग का नाम लेने से भी नशा नहीं पैदा हो सकता। प्रभु के नाम को सहस्र बार रटने से कोई लाभ नहीं। मन को तटस्थ रखकर ध्यान करने से ही प्रभु का साक्षात्कार हो सकता है।

पाठशाला की दीवार पर जो भारत का नक्शा टंगा है, उसमें जहां 'काशी' नाम और चिन्ह अंकित है, उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि 'मैं काशी हो आया हूं।' इसी प्रकार

केवल शास्त्रों के पढ़ने से कोई ब्रह्मोपदेश नहीं कर सकता।

जिस प्रकार उलझा हुआ सूत किसी काम का नहीं होता, उसी प्रकार भक्ति, शील और ध्यान के बिना संपादित की हुई विद्या भी उलझी हुई और निकम्मी होती है। विनयहीन और भक्तिहीन विद्या से अहंकार बढ़ता है। वह हृदय का इतना स्थान ले लेता है कि फिर वहां ज्ञान के लिए जगह नहीं रहती।

अहंकार राख के ढेर के समान होता है। बुद्धिरूपी पानी उस पर गिराते जाओ तो भी अहंकार रूपी राख उसे सारा-का-सारा चूस लेती है। उस अहंकार को मिटाने का एकमात्र साधन भगवद्-भक्ति ही है। ईश्वर के पास जाने के लिए धर्मशास्त्र हमें रास्ता बताते हैं। भक्ति, शील और मनन के सहारे से ही हम उस मार्ग को पार कर सकते हैं। मार्ग का पता होने से ही कोई लक्ष्य-स्थान पर कैसे पहुंच सकता है? उस मार्ग पर चलने से ही तो पहुंचा जा सकता है।



एक बार श्रीचैतन्यप्रभु दक्षिण में यात्रा करने गए। एक जगह एक पौराणिक भगवद्गीता पढ़कर सुना रहे थे। श्रोता-गण में एक भक्त भी था। गीता का एक भी श्लोक वह नहीं समझ पाता था, किन्तु उसकी आंखों से अश्रुधारा बह रही थी।

चैतन्यदेव ने उससे पूछा, "भाई, रो क्यों रहे हो? गीताजी में ऐसी कौन-सी बात है, जिससे तुम्हारा मन द्रवीभूत हो रहा है?"

भक्त ने उत्तर दिया, "मेरे कानों में तो कोई बात सुनाई

नहीं दे रही है। मैं तो रथ पर बैठे नर-नारायण को ही देख रहा हूं। अपने आंसुओं को रोक नहीं पा रहा हूं।"

यह अनपढ़ भक्त ही सच्चा ज्ञानी है। कृष्ण परमात्मा पर इसका जो प्रेम है, वही वेद-वेदान्तों का सार है। ○

८ / एक साधु की कहानी

एक साधु मन्दिर के फाटक के पास ही दिन-रात रहता था। सामने का घर एक गणिका का था। साधु रोज देखता था कि बीसियों पुरुष उस औरत के घर आते-जाते हैं। उसे इस बात से बड़ा दुःख पहुंचता था। एक दिन उसने गणिका को सुना भी दिया कि उसके कारण लोगों की बड़ी दुर्गति हो रही है।

"हे पापिन, दिन-रात तू बुरे रास्ते पर चल रही है। यमराज के दूत जब तुझे खींच ले जायंगे तब क्या करेगी ?" इससे गणिका के मन में पश्चात्ताप का भाव पैदा हुआ। वह भगवान् से क्षमा की प्रार्थना हृदय से करने लगी। किन्तु उसका पेशा चालू था, क्योंकि यही उसकी आजीविका थी। ईश्वर को बार-बार पुकार कर वह कहती थी, "प्रभो, लाचारी से यह वेश्यावृत्ति कर रही हूं। मुझे बचाना तेरा काम है।"

साधु ने देखा कि गणिका के घर लोगों का आना-जाना ज्यों-का-त्यों है। उसने सोचा, जरा यह तो मालूम करूं कि इसके यहां कितने लोग आते हैं।

तब से वह ध्यानपूर्वक देखने लगा कि वेश्यागृह में कितने आदमी आते-जाते हैं। जब कभी कोई आता तो वह एक पत्थर रख लेता था। दिन बीतते गए। पत्थरों का ढेर हो गया। फिर एक बार उसने गणिका को बुलाया और उसको पत्थरों का ढेर दिखाता हुआ बोला, "यह देख, अपने पापों का संचय ! मेरा कहना नहीं मानती है। यह ढेर देखकर अब तू कल्पना कर

सकती है कि तेरा पाप कितना बड़ा है, उसका तुझे नरक में पहुंचने पर कैसा दण्ड मिलनेवाला है।"

गणिका पत्थरों का ढेर देखकर घबरा गई। भयभीत होकर रोती हुई प्रार्थना करने लगी, "हे प्रभो, मुझे अपने पास बुला लो, मैं तुम्हारी शरण में आई हूं। मुझे इस दुनिया से उठा लो।" वह फूटफूट कर रोने लगी। बेहोश हो गई। भगवान् ने उसकी पुकार सुन ली। गणिका के प्राण छूट गए।

साधु का भी जीवनकाल समाप्त हो जाने के कारण वह भी उसी दिन मर गया।

अतीव आश्चर्य की बात—यम के दूत साधु के प्राण नरक की ओर ले जा रहे थे। पश्चात्ताप से दुखी वेश्या की आत्मा विष्णुधाम पहुंच रही थी !

साधु ने यह देखा तो चिल्ला उठा, "हे दासी, यह कैसा अन्याय हो रहा है—पापों का ढेर, तू स्वर्ग जा रही है और मैं, जो सारे समय शुद्ध संन्यासी बना रहा, नरक के द्वार में घसीटा जा रहा हूं ! ईश्वर तू बड़ा अन्यायी है !"

विष्णु के दूत, जो गणिका के प्राण ले जा रहे थे, संन्यासी को समझाने लगे, "भाई, संभल जाओ। ईश्वर के दरबार में अन्याय नहीं चलता। तुम्हारा जीवन एक ढोंग था। तुमने संन्यासी का आडम्बर चाहा। वह देखो तुम्हारा शरीर। वह अवश्य शुद्ध रहा। लोग हार वगैरा पहनाकर उसका सम्मान कर रहे हैं। तुम्हारे शरीर का वे बाजे के साथ जुलूस निकाल रहे हैं।

"वह देखो, वेश्या का शव। उसकी दाहक्रिया भी ठीक

तरह से नहीं हुई। श्मशान में पड़ा वह शरीर चील इत्यादि का आहार बन रहा है, किन्तु उसका मन पश्चात्ताप से पुनीत हो गया था। इसी कारण उसकी आत्मा परम पद को प्राप्त कर रही है। उस औरत का सारा पाप तुम्हें लग गया, क्योंकि तुम सारा समय उस औरत के पापों को सोचने और देखने में व्यतीत करते थे।"

दूसरे लोग क्या गलतियां करते हैं, इसकी फिक्र भक्त को नहीं होनी चाहिए। ईश्वर मनुष्यों की परीक्षा तरह-तरह से लेता है। निर्णय करनेवाला भी वही है। उसकी लीला हम नहीं समझ सकते।

अपने हृदय को पवित्र रखें तो हमारी दृष्टि उदारतापूर्ण होगी। ○

९ / बातचीत और मौन

जब कोई ईश्वर का कृपापात्र होकर भक्ति और शील से ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब उसके पास लोग अपने-आप आते हैं और उसकी बात सुनने और मानने लग जाते हैं। लेकिन ऐसे ऊंचे आध्यात्मिक पद पर पहुंचना आसान नहीं होता। पूर्ण भक्ति से ही परमेश्वर का अनुभव हो सकता है, केवल पढ़-लिखकर शास्त्री बन जाने से नहीं। हिमालय पर्वत का ही उदाहरण लें। उसके विषय में चाहे हम कितनी ही किताबें पढ़ डालें, दूसरों के हिम-वर्णन सुनें, हमें उस पर्वत की महानता का अनुभव पूर्णतया तबतक नहीं हो सकता जबतक हम स्वयं अपनी आंखों से उसे देख नहीं लेते, उसकी ठण्डी हवा का अनुभव नहीं करते।

कुछ लोग यह समझकर कि उन्हें मुक्ति-मार्ग का पता चल गया है, अहंकार और दम्भ के वश में आकर अपने आसपास चेलों को इकट्ठा करने लगते हैं, किन्तु यदि किसी में वास्तविक दैवी गुण हों तो लोग उसके पास अपने-आप पहुंच जाते हैं। उस आदमी के उपदेश सरलता से ओतप्रोत और अकृत्रिम होते हैं। मधु से भरे पुष्प के पास भ्रमर स्वयं आ जाते हैं। जहां गुड़ रखा हो वहां के लिए चीटियां निमंत्रण की प्रतीक्षा नहीं करतीं। इसी प्रकार ज्ञानवान पुरुष के पास उसको ढूंढ़ते हुए लोग अपने-आप पहुंच जाते हैं। उसकी आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव गुड़ और शहद की तरह मधुर होता है। शिष्यवर्ग उसकी गंध से आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। सच्चा

ज्ञान तो प्रभु की कृपा और भक्ति से मिलता है। जबतक उसका कृपापात्र न बने, किसी में ज्ञान का विकास पूरी तरह नहीं हो सकता। अधूरी अवस्था में आचार्य बनने का प्रयत्न व्यर्थ होता है। लोगों के मन पर ऐसे आदमी के उपदेश का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ सकता।

जलते हुए दीप में पतंग न जाने कहां-कहां से, बड़े वेग के साथ, अगणित संख्या में, आ गिरते हैं। कोई उन्हें बुलाता नहीं। सच्चे ज्ञानी अग्नि के समान तेजयुक्त होते हैं। शिष्यगण उनकी शक्ति से आकृष्ट होकर कहीं से भी आ पहुंचते हैं।



जो आदमी परमात्मा की कृपा से ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह जो कुछ करता है, ईश्वरार्पित कर देता है। वह हरएक काम उसकी सेवा समझ कर करता है। उस आदमी के समस्त कार्य उपदेश-रूप होते हैं। वैसे पुरुष को कुछ अलग बोलने की आवश्यकता नहीं रहती। वह जो कुछ करता है, लोग उसका अनुकरण करते हैं। उसकी ध्यानावस्थित मुद्रा दूसरों के मन में उपदेश का जैसा ही असर डालती है। उसका हृदय सुविकसित पुष्प की तरह होता है, जो अन्य मनुष्य-रूपी भ्रमरों को आकर्षित करके उन्हें आध्यात्मिक मधु खिलाता रहता है।

ज्ञान और भक्तिवाले ज्ञानी का आत्मज्ञानोपदेश उस बृहत् धान्य-भण्डार की तरह होता है, जहां से चाहे कितना भी अनाज ले लें, भण्डार भरापूरा ही रहता है। वे उपदेश ईश्वरीय होते हैं और उनका कोई अन्त नहीं होता। स्वयं अनुभव किए बिना किताबों के पढ़ने से थोड़ा-बहुत ज्ञान पाकर अपने को

कोई गुरु मान ले तो यह अधिक देर चल नहीं सकता। जैसे छोटे-से बाजार की अनाज की दुकान का अनाज जल्दी खत्म हो जाता है, वैसे ही उस आदमी का ज्ञान-भण्डार रिक्त हो जाता है। इन दोनों प्रकार के आचार्यों के उपदेश में यही अन्तर है।



किसी-किसी बड़े घर में छत पर से नालियों द्वारा बारिश का पानी जमा कर लिया जाता है। नलों के मुखद्वार, जहां से पानी गिरता है, शेर, गाय आदि पशुओं के मुखाकार बने होते हैं। उन्हें देखने पर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे शेर या गाय के मुंह से पानी निकल रहा हो, किन्तु पानी तो आकाश से वर्षा द्वारा आता है। सिद्ध ज्ञानियों के मुखों से हम जो उपदेश सुनते हैं, वह वास्तव में प्रभु का ही वचनामृत होता है।

घड़े में पानी भरते समय जबतक घड़ा भर न जाय तबतक आवाज निकलती रहती है। भर जाने पर कोई आवाज नहीं होती। शास्त्रों का केवल बाहरी अध्ययन करनेवाले बहुत बोला करते हैं। ज्ञानी लोग मौन धारण करके ईश्वर में चित्त लगाए रहते हैं।

दावत में आये हुए लोग एक-दूसरे से मिलने पर खूब जोरों से बातचीत करने लगते हैं। भोजन के शुरू होते ही शोर कम हो जाता है। खीर के आने पर तो उसके खाने की चपचप के अतिरिक्त कोई भी आवाज सुनाई नहीं देती। पेट भर जाने के बाद तो एकदम नींद आ जाती है और सब सो जाते हैं।

वाद और प्रतिवाद परमात्मा के दर्शन से पहले होते हैं। भगवद्-दर्शन मिल जाने पर एकदम शान्ति हो जाती है। जब

हम बाजार में घुसने लगते हैं तो बड़ा शोर मालूम पड़ता है। परन्तु अन्दर प्रवेश करने के बाद जब हमारा मन चीजों के दाम पूछने और खरीदने में लग जाता है तब हमें किसी प्रकार के शोर का पता नहीं चलता। जबतक हम प्रभु से दूर रहते हैं, वाद-प्रतिवाद का शोर-गुल सुनाई देता रहता है, किन्तु उसके निकट पहुंचने पर हम एकदम उसमें लीन हो जाते हैं।

कढ़ाई के घी में पूरी डाली जाती है तो 'छुन' आवाज निकलती है, परन्तु जब वह पूरी फूलकर पक जाती है तो कोई आवाज नहीं होती। भक्ति करनेवाले भी प्रारम्भ में खूब बोलते हैं। मन का विकास होने पर चुप हो जाते हैं। ○

१० / तेल का कटोरा

एक समय नारद मुनि को अपनी भक्ति का बहुत घमंड हो गया और वह सोचने लगे कि मेरे समान भक्त अन्य कोई नहीं हो सकता। उनका यह गर्व अन्तर्यामी भगवान् से कैसे छिपा रह सकता था ?"

अतः नारदजी को बुलाकर विष्णु भगवान् बोले, "हे नारद, आप जरा भूलोक की सैर कर आवें। वहां मेरा एक बड़ा ही प्रिय भक्त है। उससे भी आप मिल आवें और उसके गुण-विशेष का भी कुछ परिचय प्राप्त कर आवें।"

नारदजी को यह सुनकर बड़ा ही कुतूहल हुआ। सोचने लगे, "भला ऐसा कौन भक्त हो सकता है, जिसकी महाविष्णु इतनी प्रशंसा कर रहे हैं ? भूलोक चलकर देखूं तो !" उन्होंने भगवान् विष्णु से उस आदमी का नाम-धाम मालूम किया और भूलोक पहुंचने पर देखा कि वह आदमी, जो एक साधारण किसान था, अपने कृषि-सम्बन्धी कामों में दिन-भर लगा रहता था। सिर्फ सुबह बिस्तर से उठने पर एक बार 'हरि' कहकर भगवान् का नाम लेता था और हल लेकर खेत पर पहुंच जाता था। घर लौटने पर सोने से पहले भी एक बार 'हरि' कहने की उसकी आदत थी।

नारदजी मन-ही-मन खूब हंसे ! सोचने लगे, "यह दिन-भर अपने काम में मग्न रहता है, सिर्फ दो बार हरि का नाम लेता है। बस, इतने पर ही भगवान् खुश हो गये !" वह वापस

विष्णुलोक पहुंचे और भगवान् को नमस्कार करके बोले, "आपके भक्त को देख आया। मुझे उस आदमी में कोई विशेष बात नहीं दिखी। वह तो बस अपनी खेती में रमा रहता है। शायद आपने मुझे चिढ़ाने के लिए भूलोक भेजा था।"

भगवान विष्णु ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्होंने एक तेल-भरा कटोरा नारदजी के हाथ में पकड़ा दिया। नारदजी महाविष्णु की तरफ देखने लगे। तब भगवान् बोले, "यह कटोरा तेल से भरा हुआ है। इसे हाथ में लिए एक बार और भूलोक का भ्रमण कर आइए। सावधान रहें, तेल एक बूंद भी न गिरे।"

नारद मुनि ने महाविष्णु की आज्ञा का पालन किया और एक बूंद भी तेल नहीं गिरने दिया। अत्यन्त हर्षित होते हुए वह वैकुण्ठ लौटे। वहां भगवान् ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उनका स्वागत किया और कहा, "मुनिवर, आप लौट आए ? अच्छा, यह तो बताइए कि आपने अपने भ्रमण में मुझे कितनी बार याद किया ?"

नारदजी बोले, "भगवन्, आपको मैं क्या याद करता। मेरा ध्यान तो हर समय तेल को बचाने में ही रहा। आपकी आज्ञा थी कि मैं तेल से भरे कटोरे को हाथ में लिए दुनिया का चक्कर लगा आऊं और एक बूंद भी तेल न गिरने दूं।"

इस पर भगवान् विष्णु ने कहा, "नारदजी, इस छोटे-से तेल के कटोरे ने आपको मेरा स्मरण करने से रोक रखा। जब आप जैसे योगी के लिए भी, चित्त दूसरे काम में लगा रहने के कारण, मुझे याद करना असम्भव रहा तो बेचारे उस किसान

को हम कैसे दोष दे सकते हैं ? हद से ज्यादा कामों का बोझ होने पर भी वह प्रतिदिन दो बार मेरा स्मरण करता है। अब आप समझ सकते हैं कि वह कैसी ऊंची कोटि का भक्त है।"

यह सुनकर नारद मुनि बड़े लज्जित हुए।

●

ऐहिक सुख-भोग की लालसा जब प्रबल होती है तब उसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। चित्त को अन्य विषयों में लगाना चाहिए। इससे सफलता न मिले तो परमात्मा से प्रार्थना करो। प्रभु को मां, बाप या सखा समझकर स्मरण करो। उसके नाम के उच्चार से अवश्य लाभ पहुंचेगा।

मन के मैल को मिटाने के लिए हरिनाम का जप अचूक औषध है।

"भगवन्नाम के जप से तो मेरे मन को कुछ शांति नहीं मिलती"—एक ने एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस से कहा। इसका उन्होंने यों उत्तर दिया, "बेटा, प्रभु से रोकर प्रार्थना करो कि हरि-नाम के जपने से तुम्हें आनन्द मिले। तुम्हारी प्रार्थना वह जरूर सुनेंगे। हे माता-पिता, हे कृष्ण, हे राम, हे गोपाल, हे गोविन्द, हे शम्भो, हे महादेव, इनमें से कोई एक नाम पसन्द कर लो। प्रतिदिन उस नाम को बार-बार याद करो। तुम्हारा मन उसमें लग जाएगा। बीमारी में आहार की रुचि नहीं रहती, किन्तु ज्यों-ज्यों रोगी अच्छा होता जाता है, उसकी खाने-पीने की इच्छा बढ़ती जाती है।"

ईश्वर और उसका नाम भिन्न नहीं हैं। एक बार श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी ने तराजू में एक तरफ स्वयं भगवान् को

और दूसरी तरफ तुलसी-पत्र और भगवन्नाम को रख दिया। तोल में फर्क नहीं पड़ा। ऐसे ही चैतन्य-देव ने एक बार कहा था, "ईश्वर का नाम सजीव बीज के समान है। बीज किसी महल के एक खम्भे पर बरसों तक पड़ा रह सकता है। महल के टूटकर खंडहर बन जाने के बाद भी वह जमीन पर गिरकर वर्षा के बाद उग सकता है और बड़ा पेड़ बनकर फूल-फल देने-वाला हो सकता है। इसी भांति भगवन्नाम का जप कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।" ○

११ / दैवी कवच

वृक्ष के अन्दर जो शक्ति है वह जड़ से लेकर ऊंची-से-ऊंची शाखा तक पहुंचती है। उसी शक्ति के प्रभाव से पेड़ पत्तों, डालियों, फूलों और फलों से परिपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ठ की समस्त वस्तुओं के अन्दर, चाहे वे किसी आकार की क्यों न हों, परब्रह्म का निवास है। उस परमतत्त्व को ही महात्मा लोग महाशक्ति, माया या अन्य नामों से पुकारते हैं। इस संसार की समस्त जीवराशि उसी महाशक्ति का अनन्त रूप है। परमतत्त्व ने स्वेच्छा से विविध रूप धारण कर लिए हैं। ये सब विभिन्न वस्तुएं फिर से एकत्र होने के सतत प्रयत्न में रहती हैं। भौतिक और मानसिक आकर्षणों का यही कारण है। भौतिक और विज्ञान के शास्त्रियों ने इसका खूब अध्ययन किया है। पृथ्वी अपने से निकली हुई वस्तुओं को अपनी तरफ खींचती है। सारा भूमण्डल उसी आकर्षण के आदेश और वेग से घूमता रहता है। वैज्ञानिक लोग इसको समझने और समझाने का निरन्तर प्रयत्न करते आ रहे हैं। भौतिक विज्ञान बहुत ही बड़ा शास्त्र है, फिर भी इस आकर्षण और इसके नियम के मूल कारण को समझना वैज्ञानिक प्रयोगों की सीमा के बाहर की बात है। वह महाशक्ति विज्ञान से भी परे है। श्रीरामकृष्ण दुर्गा, शंकरी, देवी, आदि नामों द्वारा भक्तिभाव और गद्‌गद् कण्ठ से पुकारकर उसी शक्ति की उपासना करते थे। उसी शक्ति की श्री शंकराचार्य ने भी सहस्र नामों से वन्दना की थी।

महाशक्ति में विलीन होने के लिए विभिन्न वस्तुओं में अनेक पारस्परिक आकर्षण होते हैं। स्त्री-पुरुष का आकर्षण भी उन्हीं में से एक है। इस आकर्षण से मनुष्य परेशान भी होता है और साथ ही साथ सुख का भी अनुभव करता है। गृहस्थ-जीवन के समस्त सुख-दुःख का अनुभव इस आकर्षण के कारण ही होता है। इसी के प्रभाव से मनुष्य पाप की तरफ भी जाता है। यह प्रबल आकर्षण समस्त प्राणियों में स्वाभाविक ढंग से पाया जाता है। जैसा कि हमारे पूर्वज सदा कहते आए हैं, इस वेग को काबू में रखकर धर्म के मार्ग की ओर ले जाना चाहिए। मन और शरीर के इस पाशविक वेग को वश में रखने के लिए और इसे विनाशकारी मार्ग पर जाने से रोकने के लिए गृहस्थ जीवन सर्वोत्तम साधन है।

कोई-कोई योगीजन पाशविक इच्छाओं को पूरी तरह से वश में कर लेते हैं और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। ऐसे योगियों के शरीर और मन दोनों ही महाशक्ति की कृपा से पवित्र होकर त्राण पाते हैं। पाशविक इच्छा को यदि कोई पूरी तरह से न रोक पाये तब भी वह जितना रोकेगा उतना तो लाभ पा ही लेगा। संयम से आत्मशक्ति बढ़ती है। उससे बुद्धि का विकास होता है।

हम भारतीयों को हमारे पूर्वजों का सुसंस्कार मिला है। हमें उनके परम्परागत विवेक और संतोष का लाभ प्राप्त है। हम आवेगों को रोककर संतुलित चित्त के साथ रह सकते हैं। किन्तु इन सब गुणों के होते हुए भी पाशविकता का खतरा बना ही रहता है। यह पाशविकता समस्त जीवराशि में पाई जाती

है। इसका यदि हम अंकुश में न रखें तो यह राक्षस का रूप धारण कर हमें, हमारी संस्कृति को और हमारी बुद्धि को खा जाय। इसलिए इससे खूब सावधान रहना चाहिए।

जिस समूह में स्त्रियां बेखटके, किसी रक्षक के बिना, कहीं भी आ-जा सकती हों, वही समाज प्रगतिशील और सुसंस्कृत है। ऐसे ही समाज के लोग सुखी होते हैं। आजकल हमारे शहरों में सभी जाति के स्त्री-पुरुष पहले की अपेक्षा अधिक सुन्दर वेश-भूषा में दिखाई देते हैं और सफाई से रहते हैं; किन्तु लोगों का मन संयमी है, इसमें मुझे सन्देह है।

स्त्रियां स्वभाव से लज्जाशील होती हैं; किन्तु लज्जा कुछ और वस्तु है, डर कुछ और। किसी स्त्री के मन में किसी भी पुरुष से डर का भाव क्यों हो ? यदि पुरुष का मन स्वच्छ हो तो स्त्रियों के मन में भय नहीं रह सकता। मन के भाव चेहरे पर साफ दिखाई देते हैं। स्त्रियां पुरुषों के मन को चेहरे पर से समझ लेती हैं और बुरी नीयतवालों से उनका डरना स्वाभाविक होता है।

जिस समाज में ऐसे लोग भरे हों, जिन्हें देखकर स्त्रियां कांपती हों, वह सराहनीय कैसे हो सकता है? हम लोग जबतक अपने पाशविक आवेगों को संयम में न रखेंगे तबतक हमारी जाति सुसंस्कृत नहीं कहला सकती।

श्रीरामकृष्ण परमहंस नारियों में ईश्वर का, अर्थात् उसकी शक्तिरूपी देवी का, दर्शन करते थे। अच्छी-बुरी कैसी भी स्त्री हो, उससे उनके मन में भक्ति का उदय हो जाता था। परमहंस के बताए हुये इस उपाय को देवी दुर्गा का दिया हुआ कवच समझना

चाहिए, जिसे पहनकर हम पाशविक इच्छारूपी राक्षस का सामना कर उसे काबू में ला सकेंगे और जिससे समाज का भला होगा। कैसा भी कठिन कार्य क्यों न हो, वह अभ्यास से साध्य हो जाता है। इसलिए हमें चाहिए कि हम श्रीरामकृष्ण के दिये हुए दैवी कवच का लाभ उठावें।

मैं हाईस्कूल और कालेजों के विद्यार्थियों को चेतावनी देता हूं कि वे खूब सावधान रहें। सफाई सिर्फ शरीर और कपड़ों की नहीं होती, मन को भी खूब स्वच्छ रखने का प्रयत्न करना चाहिए। उसी से बुद्धि की प्रगति होती है। गन्दगी से भरे हुए अश्लील चल-चित्रों और पुस्तकों से हमारे समाज को भारी हानि पहुंचती है। कुछ लोगों ने पाशविक आवेगों के प्रदर्शन को पैसा कमाने का एक साधन बना लिया है। लोगों से उनको प्रोत्साहन भी मिलता रहता है। निर्दोष बालकों को पतन के मार्ग पर जाने के लिए उत्तेजना देना पाप है। ऐसे कार्य को हमें आगे चलने नहीं देना चाहिए। हमें चाहिए कि हम पराशक्ति की आराधना करें और अच्छे गृहस्थ-धर्म का पालन करें, जिससे हमारे देश की स्त्रियों के मन में कभी डर का भाव पैदा न हो, भारतवर्ष के पुरुष स्त्रियों के सच्चे सेवक और रक्षक बनें, सदाचार की बृद्धि हो, भारत के लोगों का कल्याण हो। ○

१२ / पानी के ऊपर नाव

नाव पानी के ऊपर ही रहती है । लेकिन अगर पानी नाव के अन्दर आने लगे तो नाव डूब जायगी । गृहस्थ भगवद्भक्त का भी यही हाल है । सांसारिक कामों के बीच रहते हुए भी मन पर भौतिक चिन्ताओं का अधिकार नहीं जमने देना चाहिए, अन्यथा हम उसी में डूब जायंगे ।

हमें चाहिए कि एक हाथ से लौकिक कार्य करते जायं और दूसरे हाथ से प्रभु के चरण पकड़े रहें । इतना ही नहीं, जब अवकाश मिले तो दोनों हाथों से प्रभु के चरणों को मजबूती से पकड़ें ।

धाय अपनी स्वामिनी के बच्चे को बड़े प्यार से अपना दूध पिलाती है, जैसे वह उसी का बच्चा हो । साथ-ही-साथ वह इस बात को नहीं भूलती कि बच्चा किसी और का है—दूध पिलाने के सिवा बच्चे पर उसका कोई अधिकार नहीं, न इसके सिवा बच्चे से उसका कोई दूसरा सम्बन्ध ही है । इसी प्रकार भक्त सांसारिक कामों को भगवान् की सेवा समझकर करता रहता है ।

हमारा घर-बार, धन-दौलत सबकुछ ईश्वर का है । सच्चा मालिक वही है । इसे हम एक बार समझ लें तो यही भावना हमारे अन्दर सदा रहेगी ।

सैनिकों में से कुछ खुले मैदान में शत्रु का सामना करते हैं । अन्य किले के अन्दर रहकर नगर की रक्षा करते हैं । संन्यासी

लोग उन सिपाहियों के जैसे होते हैं, जो बाहर खड़े होकर लड़ते हैं। गृहस्थ दुर्ग के भीतर से लड़नेवालों के जैसे होते हैं। उन्हें अवश्य दूसरों की अपेक्षा कुछ सुविधाएं मिल जाती हैं; किन्तु दोनों प्रकार के सिपाही वीर तो होते ही हैं।

रणक्षेत्र में जाकर लड़ने योग्य बनने से पहले मनुष्य युद्ध की शिक्षा लेते हैं। गृहस्थ जीवन में ही मनुष्य को वैराग्य की भी शिक्षा मिल जाती है। वहीं उसका मन संन्यास के लिए परिपक्व अवस्था प्राप्त करता है।

मन की परिपक्वता के बिना घर में पत्नी और पिता से झगड़कर कोई संन्यास ले ले, तो उसे हम संन्यास नहीं कह सकते। थोड़े ही दिनों में ऐसे आदमी का मन विषय-वासनाओं के पीछे दौड़ने लगेगा।

हम कौटुम्बिक कामों को निर्लिप्त भाव से करते जाएं। जो कुछ करें, प्रभु की सेवा समझकर करें। धीरे-धीरे अभ्यास से मन परिपक्व हो जायगा। तब संन्यास भी लिया जा सकता है। तभी सब वस्तुओं में परमात्मा का दर्शन करके संन्यास का लाभ भी उठाया जा सकता है।



एक गांव में कुछ वैरागी रहते थे। भूख लगने पर वे गांव में जाकर भिक्षा मांगते और जो कुछ मिलता उसी से संतोष करते थे। उनमें से एक भक्त भिक्षा मांगने के लिए एक जमींदार के घर गया। जमींदार अपने नौकर को बड़ी निर्दयता से पीट रहा था। वैरागी से यह न देखा गया। वह चिल्ला उठा, "बेचारे को मारिये नहीं। ईश्वर आपका भला करे!" इससे

जमींदार का क्रोध वैरागी की ओर फिर गया। नौकर को छोड़ वह वैरागी को पीटने लगा। उस बेचारे से मार सही नहीं गई। वह वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा। उसे गिरते देखकर जमींदार का क्रोध कुछ शांत हुआ और वह घर के भीतर चला गया। जो लोग यह काण्ड देख रहे थे, उन्होंने वैरागियों के मठ में पहुंचकर सारा हाल सुनाया। वैरागी गांव में दौड़ गए और अपने बेहोश साथी को मठ में लाकर उसकी सेवा करने लगे। बहुत देर बाद उस बेचारे को होश आया। एक वैरागी ने उससे पूछा, "क्यों भाई, मुझे पहचान रहे हो न?"

उत्तर मिला, "क्यों नहीं ? पहले तुमने ही तो मुझे खूब पीटा था, अब मेरे मुंह में दूध डाल रहे हो।"

यह वैरागी सच्चा ज्ञानी था। जिसने पीटा उसमें और जो प्यार से शुश्रूषा कर रहा था, उसमें भी उसने एक ही परमात्मा का दर्शन किया। हमारे सभी सुख-दुःख परमेश्वर की लीला के सिवा और कुछ नहीं हैं। ○

१३ / सार्वजनिक सेवा

एक रोज कुछ युवक परमहंस के पास आए और उनसे कहने लगे, "हम लोगों ने प्रण ले लिया है कि सार्वजनिक कामों में ही लगे रहेंगे।"

उन्हें उत्साह से भरा देखकर श्रीरामकृष्ण बोले, "आप लोगों का निश्चय अवश्य सराहनीय है। समाजसेवा बड़ी चीज है; किन्तु पहले ईश्वर का स्मरण करके अपने अन्तःकरण को पवित्र कर लीजिए। उसके बाद अपने निश्चित कामों में लग जाइए। ईश्वर के ध्यान से आप लोगों में शक्ति पैदा होगी। भक्तिपूर्ण प्रार्थना से आप लोग सामाजिक कार्य करने में सफलता पायंगे। ईश्वर के नामों का उच्चारण कीजिए। सन्तों के गाये हुए भजन गाते जाइए। तब आपको अपने कामों को समझना और करना अधिक सरल मालूम होगा।"



किसी प्रकार के सार्वजनिक कार्य में लगने से पहले हमें श्रीरामकृष्ण के इस उपदेश को याद कर लेना चाहिए। उन्होंने कहा था, "आप लोग यह सोचते हुए कि हम दुनिया के लिए यह करेंगे, वह करके दिखा देंगे, कामों की खोज में लगे रहते हैं। इसकी क्या आवश्यकता है? जो काम स्वाभाविक रूप से आपके सामने आता है, उसे करते जाइए। नाम कमाने की इच्छा से सार्वजनिक कामों के पीछे न पड़िए। सेवाभाव से कर्तव्य समझकर काम कीजिए। ईश्वर से भक्तिदान मांगिए। उससे स्वच्छ

हृदय से सेवा करने की शक्ति की प्रार्थना कीजिए।"



देश की सेवा कई तरह से की जा सकती है। समाजसेवा बहुत ही उत्तम वस्तु है, किन्तु नाम कमाने की उमंग से सेवा-कार्य न कीजिए। यह अच्छा सार्वजनिक काम करनेवालों को बुरे मार्ग पर ले जा सकती है। स्वार्थ के विचार बाहर से दिखाई दें या मन में ही रहें, वे हमारे किये हुए सारे कामों और महत्वाकांक्षाओं को विफल कर देंगे।

कुछ देशभक्त सोचा करते हैं कि हमने समाज के लिए क्या-क्या नहीं किया, फिर भी पाया तो कुछ भी नहीं। इस तरह का मानसिक क्लेश उचित नहीं। प्रतिफल की इच्छा और नाम कमाने की आशा रखते हुए सेवा-कार्य करने से उलटा ही परिणाम मिलेगा। लोभ अच्छे-से-अच्छे कार्य को भी बिगाड़ सकता है। कर्म करना हमारा काम है। कर्मफल ईश्वर के ऊपर छोड़ दें तो हमें क्लेश न होगा।

अपना निजी लाभ दृष्टि में रखकर सार्वजनिक सेवा करने को हम सेवा नहीं कह सकते। वह तो एक व्यापार होगा। देश की सेवा जिन्होंने की वे लोग प्रसिद्ध अवश्य हुए हैं। लेकिन उन लोगों ने सेवा-कार्य नाम कमाने के लिए नहीं किया। इसी कारण उन लोगों ने अपने कामों में सफलता प्राप्त की। इस बात को समझे बिना लोग जब उनके जैसे बड़े हो जाने की आशा से सेवा-मार्ग का ढोंग करने लगते हैं तो वे अवश्य ही पछताते हैं।

कहा जाता है कि एकदम निःस्वार्थ समाज-सेवा कैसे की जा सकती है? सर्वथा निःस्वार्थ बनना अशक्य मालूम पड़े तो

समाज-सेवा के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। अपने कौटुम्बिक कामकाज में लगे रहें। यह भी सेवा ही है। समाज-सेवा में जो मन की ग्लानियां भोगनी पड़ती हैं, वे इसमें नहीं होंगी।

स्वार्थ को छोड़ना आसान नहीं होता। इसीलिए भगवान् रामकृष्ण कहते थे, "भक्तिरूपी पवित्र जल से मन के मैल को खूब धो लीजिए। ईश्वर-प्रार्थना करने के बाद ही किसी सामूहिक काम में लगिए।" परमहंस के इस सदुपदेश का पालन करना, खास करके आजकल के सार्वजनिक काम करनेवालों के लिए, बहुत ही आवश्यक है। नींव को खूब मजबूत बनाकर बाद में कैसी भी इमारत खड़ी की जा सकती है।

शल्य-चिकित्सा करनेवाले वैद्य अपना काम शुरू करने से पहले शस्त्रों की खूब सफाई कर लेते हैं। इसी प्रकार महत्वाकांक्षा रखनेवाले भाई-बहन अपने मन को पहले खूब साफ कर लें। फिर प्रभु की कृपा उन्हें मिलेगी। अच्छे ध्येय की सफलता और मन की शांति के लिए सबकुछ ईश्वरार्पण कर देना ही एकमात्र उपाय है। प्रार्थना हृदयपूर्वक होनी चाहिए। केवल मुंह से मन्त्रोच्चारण कर लेना तो अपने-आपको धोखे में डालना है। उससे कोई लाभ नहीं।

यदि हम ईश्वर-ध्यान किये बिना कीर्ति पाने की इच्छा से लोकसेवा का ढोंग करने लगें तो उससे हृदय में शोक, ईर्ष्या और क्रोध आदि पैदा होने के सिवा और कुछ हाथ नहीं लग सकता। हमें चाहिए कि परमहंस के उपदेश के अनुसार, काम शुरू करने से पहले ईश्वर का ध्यान करें और काम को शुरू करने के बाद भी सदा प्रभु का ध्यान मन में रखें।

समाज-सेवा और ईश्वर का ध्यान, दोनों एक ही वस्तु हैं। सब काम भगवान् की सेवा समझकर किए जायं तो चित्त में प्रसन्नता रहेगी। भक्ति से उत्साह बढ़ेगा। काम भी अच्छी तरह हो सकेगा। महात्मा गांधी ने जो सफलताएं प्राप्त कीं, उनका रहस्य यही था। उन्होंने जो कुछ सोचा और किया, परमेश्वर को हृदय में रखकर किया। उनके समस्त कार्यों के साथ परमात्मा का ध्यान छाया की तरह रहा। वह उनके कामों में रुकावट रूप नहीं बना, बल्कि उससे उन्हें सफलता ही मिलती रही।

छोटे-से-छोटे सेवा-कार्य भी ईश्वर के स्मरण के साथ करना चाहिए। भगवान् का स्मरण छाया की तरह मौन रूप से हमारे साथ रहकर हमारी मदद करेगा।

शल्य-चिकित्सक का धर्म है कि वह अपने औजारों को साफ रखे। सार्वजनिक काम करनेवालों के लिए आवश्यक नियमों में चित्तशुद्धि प्रधान है। चित्त की शुद्धि एक अमूल्य धन है, जो भक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है। ○

१४ / अद्वैतवाद

अद्वैतवाद के एक प्रकाण्ड पण्डित ने परमहंस से पूछा, "अद्वैत-तत्व के बारे में आपका क्या मत है? ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या—यही वेदान्तों का सार है या नहीं?" इस प्रसंग को लेकर भगवान् रामकृष्ण ने जो उपदेश दिया, वह इस प्रकार था :

"सब मिथ्या है, माया है, परमतत्व ही सत्य है—इस तरह का वाद करना सरल होता है; किन्तु ऐसे वाद से अद्वैततत्व श्रोताओं की समझ में आ जाता है, ऐसा तो कोई नहीं कह सकते। जबतक किसी चीज को यथार्थ न समझें, उसके विषय में ज्ञान कैसे हो सकता है? जो मृगतृष्णा को समझता है वह उसके पीछे पानी की खोज में नहीं जाता। आंखों से जिस चीज को हमने देखा हो, जिसके विषय में अनुभव हो, उसमें हम धोखा नहीं खाते।"

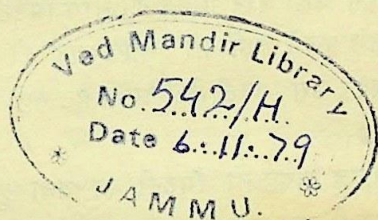
अद्वैतवाद की बातें जरा जटिल हैं। मीमांसा के द्वारा यह निर्णय होता है कि परब्रह्म ही सत्य है, बाकी सब झूठ है। इस भावना को हृदय में लाना सरल नहीं होता। शास्त्रार्थ से प्राप्त हुआ ज्ञान एक बोझ के समान ही रह जाता है, जिसके लादते रहने पर भी मन में अद्वैतभाव का उदय होना कठिन होता है। एक दिन तो हम खूब जोरों से जगत् को माया कहते हैं और दूसरे रोज सुबह होते ही भोजन की चिन्ता में पड़ जाते हैं। उसमें रुकावटें देखकर हम क्रोधित हो जाते हैं। सिद्धांत

काम नहीं देता । सामान्य लोगों के लिए भक्तिमार्ग ही लाभदायी है ।

बुद्धि हमारी इंद्रियों के सहयोग से काम करती है । जब हम सांप या किसी भयानक जानवर को अपनी आंखों से देखते हैं तो भय का अनुभव करते हैं, कांपने लगते हैं। जब पेट खाली रहता है तब खाद्य पदार्थ को देखकर हमारे मुंह में पानी भर आता है और हम भूख का अनुभव करते हैं। बहुत दिन बाद मित्र या बन्धु से मिलने पर हमारा मन पुलकित हो उठता है ।

अद्वैततत्व के अध्ययन-मात्र से विशेष लाभ नहीं हो सकता । अन्तःकरण में अद्वैतभाव के आ जाने पर मनुष्य ब्रह्म में लीन हो जाता है। तब विलगता का भाव नहीं रहता । इस तरह की स्थिति जबतक नहीं पैदा हो जाती तबतक केवल अद्वैत की बातें करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । जब कपूर जलकर हवा में विलीन हो जाता है तब उसके स्थान पर राख का लवलेश भी नहीं पाया जाता। परब्रह्म से अपने को अद्वैत (एकाकार) समझने के बाद और कुछ शेष रह नहीं सकता । नमक की पुतली को पानी में डाला जाय तो उसका क्या अवशेष रह सकता है ? अद्वैत का सच्चा ज्ञान पाने पर जब कोई परब्रह्म में लीन हो जाता है तब तू, मैं, यह, झूठ, सत्य आदि कोई चीज नहीं रहती । वाद-विवाद के लिए वहां जगह नहीं रहती। "तुझमें ज्ञान नहीं, मुझमें है," ऐसा कहनेवाला अहंकार से ही बोलता है, अद्वैतभाव से नहीं । इस अहंकार को छोड़े बिना दुनिया को कोई झूठ नहीं कह सकता । समाधि की मौन अवस्था में ही सच्चा अद्वैतभाव संभव हो सकता है, वाद-विवाद,

तर्क-वितर्क में नहीं। आचार्य और शिष्य के बीच 'तू' और 'मैं' का द्वैतभाव रहता ही है। इस तरह से पाया हुआ ज्ञान हवा से भरे थैले के समान होता है, जिसका सहारा लेकर संसार-सागर में हम थोड़ी देर तक ही तैर सकते हैं। हमें जो कुछ बुद्धि प्राप्त है, उससे भक्तिपूर्वक ईश्वरोपासना करते रहें। यही ज्ञान का मार्ग है। ○



१५ / मूर्तिपूजा

जब हम इमारत बनाते हैं तो मचान बांधकर, उसके ऊपर खड़े होकर, काम करते हैं और इमारत तैयार हो जाने पर मचान को निकाल देते हैं। जिनको ज्ञान प्राप्त है, उनके लिए मंदिर और तड़ाग की आवश्यकता नहीं होती; किन्तु सामान्य लोगों के लिए तो पूजा, स्नान आदि की आवश्यकता रहती ही है। यदि हम श्रद्धा और भक्ति के साथ मिट्टी का शिवलिंग बनाकर उसे पूजने लगें तो वही ईश्वर हो जाता है। सर्वव्यापी परमेश्वर उस मिट्टी के लिंग से हट नहीं जाता।



"यह विग्रह तो मिट्टी का बना हुआ है। इसको ईश्वर मानकर मैं पूजा कैसे करूं?"—एक सज्जन ने परमहंस से पूछा।

परमहंस ने उत्तर दिया :

"मिट्टी, पत्थर, तांबे और पीतल की आप क्यों चिन्ता करते हैं? संसार की समस्त वस्तुओं में परमेश्वर विराजमान है। यह विग्रह भी उन्हीं वस्तुओं में से एक है। इसकी पूजा बराबर हो सकती है। मिट्टी में, तांबे में, पानी की बूंद में, सबमें ईश्वर है। ईश्वर से पृथक् कोई पदार्थ नहीं होता। प्रभु की शक्ति उस पीने के पानी में भी है, जो अन्दर जाकर गले की प्यास को बुझाता है। तुलसी-माला हाथ में लेकर हरि का नाम लो। हरएक तुलसी-मणि हरि का ही रूप है।"

बिजली से चमकते हुए, गरजते काले बादलों में पराशक्ति रहती है। ये बादल जब पहाड़ों पर वर्षा के रूप में गिरते और

नदी बनकर बहने लगते हैं तो उन गम्भीर नदियों में भी परा-शक्ति का वास हो जाता है। हम नदी-तट पर खड़े होकर संध्या के समय भक्तिपूर्वक यों प्रार्थना करें, "हे जल, तुम्हारे अन्दर जो आनन्द है, उसका मेरे हृदय में भी प्रवेश हो और वह मुझे प्रफुल्लित करे ! तुम्हारी शक्ति मुझे भी बल प्रदान करे ! मेरी दृष्टि संकुचित न रहे ! जैसे जननी से बालक को पोषण मिलता है, वैसे ही तुम्हारे सेवन से मुझे पुष्टि मिले ! हे जल, तुम अन्य सब पदार्थों को स्वच्छ बनाकर स्वयं सूखकर विलीन हो जाते हो, यह गुण मुझमें भी हो ! मुझे पवित्र करो !" इस तरह चिन्तन करते हुए हम पानी में डुबकी लगाकर आचमन करें; परमात्मा की वन्दना करें। पानी भी परमात्मा की शक्ति ही है।

यदि हम सब जगह परमेश्वर का अस्तित्व मान लें तो कोई कारण नहीं कि मन को ध्यानावस्थित रखने के लिए एक दिव्य मूर्ति की स्थापना करके उसकी आराधना न कर सकें। जो सर्व-व्यापी है, वह क्या उस मूर्ति में नहीं होगा ? जिन्हें मूर्तिपूजा पसन्द नहीं, वे वैसी पूजा न करें; किन्तु मूर्तिपूजा का खण्डन मूर्खता है। पराशक्ति का वास सभी वस्तुओं में है। नैवेद्य अन्न के एक दाने में भी उस शक्ति का प्रभाव होता है।

जिस मूर्ति की हम विधिपूर्वक पूजा करते हैं, उसे केवल एक चिन्ह न समझें। जिस परमेश्वर का वास सभी जगह है, वह उस मूर्ति में भी विद्यमान है। हमारे पूर्वज मन्दिरों आदि में स्थापित की गई प्रतिमा को सदा भगवान् का अवतार मानते आए हैं, ठीक वैसे ही जैसे राम और कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानते हैं। जिस परमेश्वर ने मत्स्य में, खम्भ में, वराह में अवतार

लिया वह हमारे तीर्थस्थानों की भव्य मूर्तियों में भी विद्यमान है। हमारे सन्तों और ज्ञानी आचार्यों ने इन क्षेत्रों में भगवान् का दर्शन किया है। वे इन पवित्र स्थानों में भक्ति से ओतप्रोत होकर नाचते, गाते और आनन्द पाते रहे हैं।

कहा जाता है कि एक बार सड़क पर चलते हुए रामानुजाचार्य ने देखा कि कुछ बालक मिट्टी से मन्दिर और उसमें शेषशायी की मूर्ति बनाकर खेल रहे हैं। आचार्य ने बच्चों की बनाई उस मूर्ति को साष्टांग प्रणाम किया। हमारे हाथों से बने हुए चित्रों और विग्रहों में भगवान् का वास कैसे हो सकता है, इस प्रकार का वाद करना या हंसी उड़ाना मूर्खता है।

जो परमेश्वर चेतन-अचेतन सभी वस्तुओं में है वह क्या श्रद्धा-भक्ति से पूजे जानेवाले पत्थर, काष्ठ और धातु में नहीं हो सकता ? मूर्तिपूजा की हंसी उड़ानेवाले क्या भगवान् को एक दूसरे ही लोक में अलग रखना चाहते हैं? वे लोग ईश्वर की सर्वव्यापकता के विषय में जोरदार भाषण तो करते हैं, फिर मन्दिरों का खण्डन क्यों ? बहुत थोड़े ही लोग ऐसे हो सकते हैं, जो शुद्ध-हृदय ज्ञानी हों और चित्त को तटस्थ रखकर ध्यान कर सकते हों। यह सामान्य लोगों के लिए साध्य नहीं हो सकता। उनके लिए तो किसी एक वस्तु को सामने रखकर, उसकी पूजा द्वारा ही परमेश्वर की उपासना करना सरल है। मूर्तिपूजा की हंसी नहीं उड़ानी चाहिए। श्रीरामकृष्ण, शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य और पश्चिम के बड़े-बड़े सन्त मूर्तिपूजा से शान्ति पा चुके हैं। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि यह पूजा-पद्धति हितकारी है। ○

मां जब लोरियां गाकर अपने बच्चे को सुलाने लगती है तो बालक उससे कहता है, "मां, मैं तो सो गया।" वह नादान बालक यह नहीं जानता कि सोना क्या होता है। सचमुच सो जाने पर तो बोलना बन्द हो जाना चाहिए। जो व्यक्ति पूरी समाधि-अवस्था प्राप्त किये बिना केवल पुस्तकों के ज्ञान से "शिवोऽहम्, शिवोऽहम्" कहता रहता है, वह इसी बालक के समान होता है।

हम कितना भी इन्कार करें, अहंकार हमारे हृदय से हटता नहीं। ऐसी स्थिति में निर्गुण के बदले सगुण रूप में ही भगवान् की भक्तिपूर्वक उपासना करना हमारे लिए श्रेयस्कर है। हमें सांसारिक घटनाओं को भगवान् की लीला समझना चाहिए। यदि हम भक्तिमार्ग को इस तरह ग्रहण करेंगे तो अहंकाररूपी कच्चा फल धीरे-धीरे परिपक्व अवस्था प्राप्त कर हमारे हृदय से अपने आप झड़ जायगा। जो ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, उसका ढोंग रचकर उस पर घमण्ड करना व्यर्थ है।

एक अद्वैतवादी पण्डित के साथ बात करते हुए एक बार श्रीरामकृष्ण ने बड़े नम्रभाव से कहा, "जबतक मैं अपने को भूल नहीं सकता तबतक मेरा ब्रह्म तो सगुण ब्रह्म ही है। सर्वेश्वर की भक्तिपूर्वक आराधना में मैं कोई दोष नहीं देखता। मैं देवी की उपासना करता हूं। उसी के अन्दर समस्त विश्व को देखता हूं। देवी तो परमेश्वर का दूसरा रूप है। हीरा और

उसकी चमक भिन्न थोड़े ही हैं। सूर्य और उसका प्रकाश दोनों एक ही हैं। मैं जिस देवी की पूजा करता हूं, वही ब्रह्म है।

"केवल मुंह से 'शिवोऽहम्' कहने से कोई लाभ नहीं। जबतक मैं 'अहम्' को बिलकुल भूल न जाऊं तबतक अपने को ईश्वर का सेवक समझता हूं। वह मुझसे जो कुछ कराना चाहे, कराए।"



एक पुण्यक्षेत्र में एक संन्यासी पहुंचे। उन्होंने अद्वैत-तत्त्व के ऊपर बड़े-बड़े व्याख्यान दिये। उनके चरित्र के विषय में कुछ अवांछनीय बातें सुनने में आईं। जब परमहंस को उनसे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने संन्यासीजी से पूछा, "लोग जो बातें कहते हैं, उनमें कहां तक सत्य है ?"

संन्यासीजी ने बड़े गर्व के साथ उत्तर दिया, "इस बात की मुझे क्या चिन्ता ? मैं तो योगी हूं, वेद-वेदान्त जाननेवाला हूं। मैं इस बात की फिक्र नहीं करता कि छाया क्यों छाया से खेलती है। यह सारा संसार मिथ्या है। यह शरीर कैसी भी काम-चेष्टाएं करता रहे, उसकी परवा मैं नहीं करता। आप भी ज्ञानी पुरुष हैं। इन बातों से क्यों दुखी होते हैं ?" ऐसा उत्तर सुनकर श्रीरामकृष्ण को उस आदमी से बड़ी घृणा हुई। कहने लगे, "आपने तो अपने अद्वैतवाद को लोगों को धोखा देने का अच्छा साधन बनाया। अपने इस ज्ञान के ढकोसले को आग में डालिए !" भक्तिविहीन वेदान्त-मायावाद बहुत खतरनाक होता है।

सुना जाता है कि कौरवों के राजा दुर्योधन ने एक बार

कहा था, "आपलोग मुझे क्यों दोष देते हैं ? मैं जो कुछ अच्छा-बुरा काम करता हूं, अन्तर्यामी भगवान् की प्रेरणा से करता हूं।"

सच्चा ईश्वर-भक्त तो कभी पाप की ओर नहीं जायगा। उसके मन में दुर्विचार आ ही नहीं सकते। भरतनाट्य को खूब अच्छी तरह जाननेवाली लड़की ताल के विपरीत कदम रख ही नहीं सकती। उसके पैर तो स्वाभाविक ढंग से ठीक-ठाक ही थिरकेंगे। ईश्वरभक्ति से परिपूर्ण पुनीत हृदय में अशुद्धि के लिए स्थान नहीं हो सकता। कितने ही शिक्षित कपटी वेदान्त-सूत्रों का दुरुपयोग करके अपने को तथा दूसरों को धोखे में डालना चाहते हैं। जबतक कोई पूरे ज्ञान का अनुभव नहीं करता तबतक उसे उच्च अद्वैत की चर्चा छोड़ देनी चाहिए और भक्ति-मार्ग का सहारा लेना चाहिए।

उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और वेदान्तसागर के पारंगत श्रीमद् शंकराचार्य विलक्षण बुद्धि के होते हुए भी सदा अपने को यही समझाते रहे, "भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते !" ○

१७ / समाज-सुधार

हमारे देश में बहुत से ऐसे महात्माओं ने जन्म लिया है, जिन्होंने समयानुसार हमारी पूजा-पद्धति तथा आचार-व्यवहारों में कई सुधार किए हैं। किन्तु कुछ समय के बाद इन सुधारों और उपदेशों से नये-नये सम्प्रदायों का जन्म होने लगा, जिसके कारण जातियों की भी संख्याएं बढ़ गईं। अच्छे उद्देश्य से आरंभ किये हुए सुधार अहंकार और परस्पर निंदा के प्रेरक बन गए। भेदभाव बढ़ने लगा। हमारे सभी विभिन्न धर्म शुरू में सुधार के उद्देश्य और प्रयत्न से ही उत्पन्न हुए थे; किन्तु भगवान् रामकृष्ण के उपदेश एक अपवाद हैं। उन्होंने किसी भी धर्म या पंथ को नीचा नहीं माना। वह तो सबमें ब्रह्म को देखनेवाले ज्ञानी थे। इसलिए उन्होंने हर पंथ में भला ही देखा। रामकृष्ण के उपदेशों से लोगों ने लाभ ही उठाया। उनसे देश में किसी नए पंथ का जन्म नहीं हुआ।

पूर्ण ज्ञानी होने पर भी उन्होंने मूर्ति-पूजा का खण्डन नहीं किया। स्थितप्रज्ञ, समाधिस्थ और अद्वैतवादी होते हुए भी वह मन्दिरों और पूजा-विधियों का आदर करते थे। उनके बारे में सुन्दर उपदेश भी देते थे। वह सभी धर्मावलम्बियों की पूजा-पद्धति का एक समान आदर करते थे। उन्होंने इसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया। उनके उपदेश भी इसी प्रकार के थे।

हमारे हिन्दू धर्म में उच्च वेदान्ततत्त्व भी हैं। साथ-साथ

अनेक कर्मकाण्ड, त्योहार और मन्त्र-तन्त्रादि भी हैं। इनके विषय में श्रीरामकृष्ण ने एक बार बताया, "धान में मुख्य वस्तु तो चावल है। धान को कूटकर, छिलका निकालकर, चावल को पकाया जाता है। लेकिन चावल ज्यादा दिन रखा रहने से खराब हो सकता है। धान बिगड़ता नहीं। चावल बोने से उग नहीं सकता। उगाने के लिए धान ही चाहिए। इसी प्रकार हमारे रीति-रिवाजों, त्योहारों और नाना प्रकार के कर्मकाण्डों से, चावल के छिलके ही की तरह, हमारे धर्म की रक्षा होती है। धर्म को बनाए रखने के लिए इनकी आवश्यकता है। ज्ञान तो चावल है। किन्तु वह कुछ दिन बाद बिगड़ सकता है। मन्दिर, त्योहार आदि के सहयोग से धर्म धान की तरह मजबूत, शाश्वत और फलप्रद होता है।"

शरीर में कहीं फोड़ा-फुंसी हो तो जबतक वह कच्चा रहता है, उसकी पीब एक ढक्कन की तरह घाव के ऊपर लगी रहती है। घाव के ठीक होने पर वह सूख कर गिर जाती है। ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद रूढ़ि-रिवाज सब अपने आप हट जाते हैं। उन्हें जबर्दस्ती हटाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। हम ज्ञान पाने से पहले शील और आचार-विधियों को छोड़ने का प्रयत्न न करें। कृत्रिम उपायों से पकाये हुए फलों और स्वाभाविक रूप से पके फलों के स्वाद में अन्तर होता है।



ज्ञानियों में जातिभेद नहीं होता। उनका यह हक भी है। इस हक का वे किस प्रकार प्रयोग करते हैं, यह बताते हुए श्रीरामकृष्ण ने एक वृतान्त सुनाया :

"कृष्णकिशोरबाबू एक बार वृंदावन-यात्रा के लिए निकले। बहुत दूर चलने के बाद प्यास के कारण एक कुएं के पास पहुंचे। वहां एक आदमी पानी खींच रहा था। उससे कृष्णकिशोरजी ने पानी मांगा। उस आदमी ने कहा, "नहीं, बाबूजी, मैं तो अछूत हूं। मेर हाथ से आप पानी कैसे पियेंगे !" कृष्णकिशोरजी ने कहा, "तुम हरिनाम का उच्चारण कर सकते हो कि नहीं ? अगर कर सकते हो तो हरि का नाम लेते हुए मुझे पानी पिलाओ। उसमें कोई दोष नहीं होगा।" हरिजन ने ऐसा ही किया। कृष्णकिशोरबाबू ने अपनी प्यास बुझा ली।"

इससे ज्ञात होता है कि श्रीरामकृष्ण ज्ञान और भक्तिमार्ग का पालन करते हुए समाज-सुधार के लिए किस प्रकार उपदेश देते थे।

श्रीरामकृष्ण कहते थे, "आजकल के लोग तरह-तरह के रूढ़ि-रिवाज पसन्द नहीं करते। जो अनिवार्य मुख्य अंश हैं, उन्हीं को अपनाना चाहते हैं। इसलिए रूढ़ियों को कम करना ठीक है।" परिस्थिति के अनुसार श्रीरामकृष्ण ऐसा ही उपदेश देते थे।

आटे की कांजी बनाने के लिए आटे को पहले थोड़े कुन-कुने पानी में घोला जाय और बाद में खूब गरम पानी डालकर चलाते-चलाते उबाला जाय तो कांजी ठीक बनती है। शुरू में ही उबलता हुआ पानी डाल देने से आटे में गांठे बन जायंगी। इसी प्रकार हम एकदम समाज-सुधार करने लगेंगे तो नए छोटे-बड़े सम्प्रदाय पैदा हो जायंगे। सुधार धीरे-धीरे करते जायं तो सफलता पा सकते हैं। ○

१८ / डेढ़ पैसे की सिद्धि

कोई-कोई योगी अपने नियम और योगाभ्यास से तरह-तरह के चमत्कार दिखाते हैं और लोगों को आश्चर्य चकित कर देते हैं। ऐसी यौगिक सिद्धि पाये हुए पुरुषों के शिष्य अपने गुरु की शक्तियों का खूब प्रचार भी करते हैं।

परमहंस कहते थे कि ऐसे चमत्कारों को देखकर मुग्ध और विस्मित होना ठीक नहीं। यह सुनते ही कि कहीं पर कोई अद्भुत चमत्कार दिखाया जा रहा है, वहां जाने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। चमत्कार दिखानेवाले योगियों से कोई लाभ नहीं होता। परमहंस यह नहीं कहते थे कि यौगिक कुशलता ढोंग है, किन्तु यह बताना चाहते थे कि ऐसी सिद्धि को भगवद्दर्शन का मार्ग अथवा किसी प्रकार की उपासना का तरीका नहीं मानना चाहिए।

ऐसी सिद्धियां परमात्मा को पाने के मार्ग में कंटक-रूप हैं। उनमें न फंसिए। मंत्रोच्चारण से बीमारियों को ठीक करनेवाले या यौगिक सिद्धियों से अदालती मुकदमों में सफलता दिलानेवाले जादूगरों के पास न जाइए। सच्चे भक्त तो प्रभु के चरणारविन्दों के सिवा और किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं रखते। हो सकता है कि योगाभ्यास और नियमनिष्ठा से कुछ शक्तियां आ जाती हों। वे अपने आप आती हैं। उन्हें पाने की इच्छा सच्चा भक्त नहीं रख सकता।

आहार के परिणामस्वरूप मल-मूत्र और पसीना इत्यादि

बनते हैं; किन्तु यह आहार का ध्येय नहीं । सच्चा भक्त चमत्कार दिखाने की इच्छा से योगाभ्यास या नियम-निष्ठा का पालन नहीं करता । ऐसी सिद्धियां मल-मूत्र के ही समान होती हैं ।

अपनी सिद्धियों से मनुष्य के मन में दम्भ उत्पन्न होता है । दम्भ भगवान् को पाने में रुकावट डालता है । वह भगवान् को पाने का साधन कभी नहीं हो सकता । इसीलिए यौगिक सिद्धि के प्रति श्रीरामकृष्ण की ऐसी राय थी ।

परमहंस ने एक बार एक किस्सा सुनाया : एक योगी अपने गुरु के पास गया और कहने लगा, "मैंने चौदह वर्ष जंगल में रहकर योगाभ्यास किया । फलस्वरूप मैंने पानी के ऊपर चलने की दैवी शक्ति पा ली है ।" गुरु ने उत्तर दिया, "तुमने क्यों चौदह वर्ष का व्यर्थ कष्ट झेला ? डेढ़ पैसे में मांझी तुम्हें पार पहुंचा सकता है । तुमने जो सिद्धि पाई है, वह डेढ़ पैसे की है ।"

"दैवी सिद्धियों के पीछे समय नष्ट न कीजिए । ईश्वर को पाने के लिए सच्ची भक्ति कीजिए । चमत्कार दिखानेवाले 'महात्माओं' के पीछे न पड़िए"—ऐसा उपदेश श्रीरामकृष्ण देते थे । ○

१९ / नम्रता

सभी ज्ञानी आग्रहपूर्वक कहते हैं कि नम्रता रखनी चाहिए, क्योंकि नम्रता से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। सिद्धि प्राप्त करने के लिए कुछ लोग नम्र बन भी जाते हैं; किन्तु नम्रता स्वाभाविक और सच्चे हृदय से होनी चाहिए। हमारे पास जो विद्या, धन और गौरव आदि हैं, उनमें कोई महत्व नहीं है, इस बात का ज्ञान हो जाय तो नम्रता अपने-आप आ जायगी।

गरीब आदमी का लड़का जानता है कि उसके बाप के पास धन नहीं है। उसका व्यवहार नम्र होता है। इसी में बुद्धिमानी है। इस प्रकार धन-दौलत वाला भी नम्रतापूर्ण व्यवहार रखे, इसी में बुद्धिमानी है, क्योंकि धन-दौलत वास्तव में बहुत तुच्छ वस्तु है। नम्रता अन्तःकरण से होनी चाहिए। दूसरे लोग सराहना करें, इस विचार से हम नम्र बनें तो वह नम्रता झूठी होगी।

एक बार एक चेले ने गुरु से संप्रदाय के अनुसार हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "मैं महानीच हूं, मुझे मार्ग बतायें।" गुरु समझ गए और उन्होंने सोचा, चलो, इसको जरा सिखा ही दें। उन्होंने चेले से कहा, "अभी तुम जाओ और अपने से कम कीमत की कोई भी वस्तु लेकर मेरे पास आना।"

चेला खुश होकर बाहर आया; किन्तु जब वह अपने से कम कीमत की वस्तु की खोज में गया तो देखने लगा कि हरएक वस्तु उससे किसी-न-किसी बात में बड़ी है। पवित्रता में तथा

उपयोगिता में प्रत्येक वस्तु उससे विशेष ही थी। उसने सोचा, गुरु तो साफ पूछेंगे, तुमने क्योंकर समझा कि तुम्हारी लाई हुई वस्तु तुमसे किसी बात में कम कीमती है? इस समस्या को सुलझाने का बेचारे के पास कोई उपाय नहीं रहा। दूसरे दिन जब वह शौच के लिए जंगल में गया तो सोचने लगा, "मेरा मल अवश्य ही मुझसे तुच्छ होगा, इसी को मैं गुरु के पास क्यों न ले जाऊं?" जब वह एक पत्ते में थोड़ा-सा मल लेने लगा तो कहीं से यह ध्वनि सुनाई दी, "नीच, मेरा स्पर्श मत कर। मैं तो एक जमाने में अत्यन्त स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ था। देव-नैवेद्य के भी काम आता था। अपने दुर्भाग्य से तेरे पास पहुंचा और तेरे संपर्क में आने से मेरी यह दुर्दशा हुई है। कृपा करके अब फिर मुझे हाथ न लगा। क्या मालूम मेरी और क्या दशा हो जायगी।"

चेला खाली हाथ गुरु के पास पहुंचा और कहने लगा, "मुझसे तुच्छ वस्तु दुनिया में नहीं है। मैं अपने विसर्जित मल से भी घृणित हूं।" ○

हमने अपनी बुद्धि से, विज्ञान से, कुछ बातें मालूम कर ली हैं। किन्तु यह ज्ञान अत्यन्त अल्प और सीमित है। उस सीमा से बाहर की बातों का किसी को जरा भी ज्ञान नहीं। ब्रह्माण्ड की पहेली बड़ी जटिल है। हम उसे सुलझाने लगें तो वह और भी जटिल बन जाती है।

यहां की सभी चेतन-अचेतन वस्तुएं एक ही मूल वस्तु के रूपान्तर हैं। पानी से बुलबुले उठते हैं और थोड़ी देर पानी के ऊपर रहकर फिर पानी में ही समा जाते हैं। इस प्रकार सब जीव परमात्मा से उत्पन्न होकर फिर परमात्मा में ही मिल जाते हैं। परमेश्वर की उपमा पानी से और जीवों की बुलबुलों से दी जा सकती है। परमात्मा स्थिर और स्वतंत्र है। सभी चेतन-अचेतन वस्तुएं उसी के अधीन हैं।

परमतत्त्व गंगा नदी के प्रवाह की तरह महाप्रबल है। उसका चुल्लू-भर जल लेकर यह कहना कि मेरे हाथ में गंगा आ गई, दम्भपूर्ण मूर्खता है। हमारे वेदान्त, ज्ञान, प्रयोग—सभी नमक से बने हुए मापदण्ड के समान हैं। उससे यदि लवण-सागर की गहराई नापने लगें तो क्या परिणाम होगा? लवण लवण से मिल जायगा, और कुछ नहीं। जब जीवात्मा परमतत्त्व को समझने की कोशिश करता है, तो उसी में घुल जाता है।

चूल्हे पर हंडिया में खिचड़ी पक रही है। हंडिया खूब गर्म है। अगर उस पकती खिचड़ी में उंगली डालें, तो उंगली भी

पक जायगी। हंडिया और खिचड़ी में जो गरमी है, वह तो चूल्हे की अग्नि से आती है। इसी प्रकार मनुष्य का शरीर हंडिया है। उसकी बुद्धि और अन्य इंद्रियां खिचड़ी के समान हैं, जिनके सभी काम ब्रह्म के प्रभाव से होते रहते हैं। उस प्रभाव के बिना अणु-अणु तक क्रियाहीन हो जाता है।

छोटी-से-छोटी वस्तु का भी विश्लेषण करने पर फौरन ईश्वर का ही सामना करना पड़ता है। दक्षिण भारत के सेलम जिले में जब कुआं खोदने लगते हैं, तो चार-पांच फुट जमीन के बाद पत्थर-ही-पत्थर होता है। ब्रह्म वह पत्थर है। छोटी-से-छोटी वस्तु के पीछे भी यह प्रबल पत्थर रहता ही है। ○

२१ / ईश्वर तुम्हारे पास आएगा

एक शिष्य ने परमहंस से पूछा, "मायाजाल से छूटने का क्या उपाय है ?" परमहंस ने उत्तर दिया :

"यदि वास्तव में तुम्हारी इच्छा छुटकारा पाने की हो और तुम्हारा हृदय द्रवीभूत हो तो ईश्वर स्वयं तुम्हें रास्ता दिखायेगा। हम अपने बाल-बच्चों के लिए, संपत्ति के लिए, खूब चिन्तातुर रहते हैं, आंसू बहाते हैं; किन्तु भगवान को पाने के लिए हममें से कितना ऐसा करते हैं ?

"जबतक बच्चा अपने खिलौने से खेलता रहता है, मां रसोई में अपने कामों में लगी रहती है। कुछ देर खेलने के बाद बच्चा खिलौने से ऊबकर रोने लगता है। ज्योंही मां बच्चे के रोने की आवाज सुनती है, त्योंही वह हाथ का सब काम छोड़कर बालक के पास दौड़ी जाती है।

"इस कलियुग में कठोर तपश्चर्या की कोई आवश्यकता नहीं। तीन दिन सच्ची भावना के साथ ईश्वर का ध्यान करो, यही काफी है। मैं सच कहता हूं, ईश्वर तुम्हारे ऊपर कृपा करेगा। उसे पाने के लिए तीन दिन दीन भाव से हार्दिक प्रार्थना करो। कहो, 'हे दुर्गे, मुझे भक्ति-दान दे ! मेरी शंकाओं को मिटाकर रक्षा कर ! मैं तुझे कभी न भूलूं, तू मेरे पापों को मिटा दे !' इस तरह तीन रोज भी यदि तुम हार्दिक प्रार्थना करो तो अवश्य सफलता पाओगे। तुम्हारी भक्तिमय प्रार्थना व्यर्थ नहीं जा सकती। मेरा ही उदाहरण लो। शंका छोड़ो और

धैर्य धारण करो।"



बालक कहता है, "मां, मुझे भूख लगते ही जगा देना।" मां बोलती है, "भूख लगने पर तुम खुद ही जाग जाओगे।" ईश्वर को पाने की भूख लगने पर मनुष्य स्वयं जागृत हो जाता है। दूसरा कोई उसे क्यों जगाये ?

गांवों में स्वांग होते रहते हैं। शुरू में कुछ लोग बाजे-गाजे के साथ आते हैं, शोर करते हैं और कृष्ण भगवान को बुलाते हुए कीर्तन करते हैं। जो आदमी कृष्ण का वेश धारण करता है वह तो पर्दे के पीछे अपने खाने-पीने में, गान में मग्न रहता है। जब बाहर का शोर कम हो जाता है और नारद मुनि का वेशधारी तम्बूरे के साथ मन्द स्वर में कृष्ण-भजन गाने लगता है तो स्वांग का कृष्ण उछलकर मंच पर पहुंच जाता है। यह ग्रामीण स्वांग भी यही सबक सिखाता है कि शोरगुल और आडम्बर से कोई लाभ नहीं। सच्चे भक्तों पर ही ईश्वर का अपार प्रेम होता है।

ईश्वर को पाने की जब अति तीव्र इच्छा होती है तो वाणी बन्द हो जाती है। हृदय की ऐसी वास्तविक पुकार को वह सुने बिना कैसे रह सकता है ? वह भागकर भक्त के पास अवश्य पहुंचेगा और उसकी रक्षा करेगा। ○

२२ / सुनार की पत्नी

श्रीरामकृष्ण के शिष्यों में से एक सज्जन को सरकारी नौकरी मिल गई। प्रश्न उठा कि वेतन पाकर नौकरी करना उचित है या नहीं। इस विषय में श्रीरामकृष्ण ने अपनी राय यों दी :

"भाई, तुम तो अपनी माता के संरक्षण के लिए नौकरी ले रहे हो। इसलिए यह ठीक ही है। जब आवश्यकता न होने पर इस तरह की नौकरी की जाती है तब वह अनुचित होती है। नौकरी स्वीकार कर लो और ईश्वर की सेवा करते जाओ।"

धन और पदवी पाकर लोग फूले नहीं समाते। समाज भी ऐसे लोगों का खूब आदर करता है। लेकिन यह सब आडम्बर कितने रोज चल सकता है? जब हम इस संसार को छोड़ कर जाते हैं तब कौनसी चीज हमारे साथ जाती है? आखिर धन में रखा क्या है? अपने को कोई व्यक्ति धनी समझता है, लेकिन उस से अधिक धन औरों के पास हो सकता है। होता भी है। उनके सामने यह मनुष्य भिखारी के तुल्य होता है। अंधेरे में जुगनू निकल पड़ते हैं। मन में वे सोचते हैं कि हम सारी दुनिया को प्रकाश दे रहे हैं, हमारे समान भला कौन हो सकता है! थोड़ी देर बाद आकाश में जब तारागण चमकने लगते हैं तब जुगनुओं में कुछ नम्रता आ जाती है। तब उन्हें मालूम पड़ता है कि इन ताराओं में हमसे ज्यादा चमक है। उसके बाद चन्द्र का उदय होता है। उसे देखकर तारागण लज्जित हो जाते हैं। चन्द्र फूला नहीं समाता। लेकिन कितनी देर? पूर्व में अरुणोदय होने लगता

है, चन्द्र अपना मुंह छिपा लेता है। श्रीरामकृष्ण धनिकों से कहते हैं, "इन बातों को देखकर अपने में विनय लाइये।"

पुल के नीचे पानी बहता रहता है। वह बहता रहने के कारण साफ रहता है। उसमें बदबू नहीं आती। पानी की तरह पैसा भी एक ही जगह रहे तो सड़ सकता है। चलता रहे तभी साफ और काम के लायक होता है। धन को अपना सेवक बनाइए। आप धन के गुलाम न बन जायं।

उस सुनार की पत्नी को देखिए। एक हाथ से तो धान कूट रही है और दूसरे हाथ से गोद में लेटे बच्चे को थपकी देती जाती है और साथ-ही-साथ ग्राहक से सौदा भी करती जा रही है। नाना दिशाओं में चित्त लगाए रखने पर भी वह अपनी अंगुलियों पर मूसल की चोट भूलकर भी नहीं आने देती। इसी प्रकार हम दुनिया के व्यवहार में लगे रहने पर भी चित्त को स्थिर रखें और ईश्वर को कभी न भूलें।

खम्भे को पकड़ कर लड़का खूब तेजी के साथ घूमता है। हाथ को खंभे से खिसकने नहीं देता। इसी प्रकार हम भगवान को कभी न छोड़ें। तब हम गिरने से बचे रहेंगे।

देखिए, ग्रामीण औरतें पानी के घड़े किस प्रकार अपने सिर पर रखती हैं। पहले बड़ा घड़ा, उसके ऊपर जरा छोटा और सबसे ऊपर एक छोटा-सा पात्र। सबमें पानी भर कर, जरा भी छलकाए बिना, वे आपस में खूब बातचीत करती हुई चलती हैं। अपना सांसारिक कामकाज भी हमें इसी प्रकार सचेत रहकर करना चाहिए। कैसी भी हालत में कुपथ पर पैर न रखना चाहिए।

यदि हम सभी काम प्रभु को अर्पित करके करते जायं तो गलती नहीं होगी। यही कर्मयोग है, यही भक्तियोग भी है।

कटहल को पकाने के लिए काटते समय हाथ को तेल से चिकना कर लेने पर फल का रस उसमें चिपकता नहीं। इसी तरह भगवद्भक्ति के साथ-साथ सांसारिक कार्य किया जाय तो ऐहिक पाशों में फंसना नहीं पड़ेगा। संकट के समय में भी धैर्य रहेगा। ○

२३ / जैसे पशु जुगाली करते हैं

गोमाता हमें दूध देती है। यद्यपि दूध गाय के समस्त शरीर में उसके खून के साथ मिला हुआ है, तथापि वह थन से ही निकाला जा सकता है। सारे जगत में भगवान् विराजमान हैं, तो भी तीर्थस्थानों में भक्ति द्वारा हम भगवान् के निकट सरलता से पहुंच सकते हैं। दिन-रात सैकड़ों भक्तों के आने-जाने, श्रवण-कीर्तन, भजन-ध्यान आदि से तीर्थस्थानों की विशेष महिमा रहती है। कहा जाता है कि भक्तों की पदरज से भी आदमी पुनीत हो जाता है। यदि हम उस स्थान में पहुंचकर प्रार्थना करें, जहां भक्तगण आशापाश छोड़कर गद्गद् कंठ से प्रभु की महिमा गा चुके हों, आनन्द से नाचे-कूदे हों, तो वहां हमारा पाषाण-हृदय भी आर्द्र हो सकता है।

कहीं भी भूमि को खोदने से पानी पाया जा सकता है। फिर भी तृषातुर मनुष्य कुएं या तालाब पर पहुंच कर ही अपनी प्यास बुझाता है। हमारे तीर्थस्थान, मन्दिर आदि तैयार कुओं-तालाबों के समान हैं, जहां भक्ति की प्यास बुझाई जा सकती है।

हमें तीर्थस्थानों का पूरा लाभ उठाना चाहिए। गाय-बैल आदि पशु पहले तो खूब घास चर लेते हैं, बाद में साये में बड़े आराम से बैठे-बैठे जुगाली किया करते हैं। हमें भी तीर्थ-यात्रा से लौटने के बाद उसके पवित्र संस्मरणों को बारबार याद करके पाई हुई भक्ति का पूरा लाभ उठाना चाहिए, अन्यथा वह यात्रा

निरर्थक होगी। हृदय में भक्ति हो तो तीर्थयात्रा से उसकी वृद्धि होती है। भक्ति के बिना तीर्थयात्रा से कोई लाभ नहीं। यदि कोई घर में झगड़ा करके काशी या ऋषिकेश भाग जाये, तो वह तीर्थयात्रा कैसे कही जा सकती है ? इस प्रकार वहां जाकर मनुष्य नौकरी तो कर सकता है, घर को पैसा भी भेज सकता है, किन्तु भक्ति नहीं पा सकता।

श्रीरामकृष्ण एक बार विनोद में बोले, "मैं और मथुरानाथबाबू एक बार पश्चिम में तीर्थयात्रा करने गए। हमारे यहां की तरह वहां भी खूब हरे-हरे आम के पेड़, बांस इत्यादि थे। किन्तु एक बात मैंने देखी। वहां के लोगों की पाचन-शक्ति खूब है।"

उनके इस विनोद का यही अर्थ था कि बिना भावना के तीर्थस्थानों में रहना व्यर्थ है। ○

२४ / जगन्माता सदा तुम्हारे पास है

"हम सांसारिक बंधनों को छोड़े बिना ही ज्ञान पा सकते हैं। जनक महाराज ने भी तो राज्यभार छोड़े बिना ही ऋषिपद प्राप्त कर लिया था"—कुछ लोग इस तरह की बातें करते हैं; किन्तु ये लोग भूल जाते हैं कि राजा जनक तो एक ही हुए हैं। क्या उनके बाद हमने किसी और जनक राजा को अपने बीच देखा ?

यदि हम चाहते हों कि सांसारिक व्यवहारों को छोड़े बिना ही निरासक्त योगी बन जायं तो इसके लिए जरूरी है कि थोड़े समय तक एकान्त में रहकर ईश्वर का ध्यान करें। एक वर्ष, छः महीने, एक महीना अथवा कम-से-कम दो हफ्ते हमें इसमें लगाना चाहिए। इस अवधि में हमें चाहिए कि सतत ईश्वर का ही ध्यान करें, उसकी कृपा के लिए हृदय से प्रार्थना करते रहें। संसार में एक भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे तुम अपनी कह सकते हो। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जिस वस्तु को तुम अपनी समझ रहे हो, वह किसी-न-किसी दिन मिट ही जानेवाली है। एक शाश्वत वस्तु तो ईश्वर ही है। वही अमर है। वही सबका आधार है, रक्षक है। उसको पाने की चिन्ता करो और मन को निर्मल करने का प्रयत्न करो। ध्यान करो। इन दिनों में ऐसे लोगों की संगति बिलकुल छोड़ दो, जो भक्ति और ध्यान का मजाक करते हों, अनादर करते हों, भक्त की निन्दा करते हों।

चित्त में चंचलता का अनुभव हो, भगवती से प्रार्थना करो। वह तुम्हारी रक्षा करेगी। तुम्हारे अन्दर छिपे हुए पाप-पूर्ण विचारों से वह तुम्हें बचायगी।

इस बात का बार-बार स्मरण करो कि जगन्माता सदा तुम्हारे समीप खड़ी है। तुम स्वयं लज्जित होकर अपने दुष्कर्मों से हट जाओगे।

भगवत्-कृपा पा जाने पर मनुष्य कैसी भी अवस्था में, सुख-दुःख में, अविचल मन रखेगा और सीधे रास्ते से ही चलेगा। उसके सब कार्य ढंग से होंगे, विनयपूर्ण होंगे। व्याव-हारिक कुशलता भी उस मनुष्य में पाई जायगी। शिक्षित वर्ग में भी वह आदर का पात्र होगा। वाद-विवाद में वह समर्थ रहेगा और मां-बाप के प्रति भक्ति-विनय-युक्त तथा बन्धुवर्ग से स्नेह-पूर्ण बर्ताव करेगा। उसकी वाणी में मिठास रहेगी। पत्नी के लिए तो वह मानो प्रेम का अवतार ही दिखाई देगा। ऐसा मनुष्य ही गृहस्थाश्रम में रहकर योगी बन सकता है।

भगवान् रामकृष्ण के उपदेश अनुभव-सिद्ध और सरल हैं। अपने अनुभव से वह कहते हैं, "भगवती तुम्हारे अति समीप खड़ी है। उसकी शरण लो। तुम्हें सबकुछ मिल जायगा। तुम सब पापों से मुक्त हो जाओगे।"

यदि हम इस बात को समझ लें, इसके अनुसार चलें तो हमारा उद्धार होगा। हमारे देश का भी कल्याण होगा। ○

२५ / मां से भय क्यों ?

कई लोग अपनी जीवनी लिखा करते हैं। जो अच्छी बातें होती हैं, उनका तो वे उल्लेख करते हैं; किन्तु जो बातें पसन्द नहीं होतीं उनका नहीं करते। यदि सभी बातें लिखने लगें तो हमें पता चल जायगा कि कितनी बार हम पाप की ओर जा रहे थे और भगवान् ने हमारी रक्षा कर ली।

हम भगवान् की कृपा से ही पाप-कर्मों से बचे रहते हैं। यदि उनकी कृपा न होती तो बड़े-बड़े नामी पुरुषों की भी दुर्गति हो गई होती।

इसका यह अर्थ नहीं है कि चूंकि ईश्वर की कृपा से ही हम पाप-कर्म से बच पाते हैं, इसलिए हमें स्वयं प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं। ईश्वर की कृपा पवन की तरह सदा-सर्वत्र व्याप्त रहती है। नाव चलानेवाला जबतक अपना मस्तूल ठीक तरह से खोलकर बांध नहीं लेता तबतक वह उस पवन का लाभ नहीं उठा सकता। हमें भी चाहिए कि अपने हृदयरूपी मस्तूल को व्यवस्थित रखकर ईश्वर की दया का पूरा लाभ उठावें।

कोई भी काम करना पड़े तो हम उसे खुशी से करें। किसी काम को नीचा न समझें। दुनिया में सभी आवश्यक काम समान होते हैं, उनमें ऊंच-नीच की संभावना नहीं हो सकती।

कोई भी काम हो, ईश्वर का ध्यान करके शुरू करो। तुम्हारी भक्ति से भगवान् की कृपा तुम पर होगी। भगवत्कृपा से तुम्हारा कार्य सफल होगा।

बरसों से बन्द अंधेरी कोठरी में भी दिया जलाने पर उसकी ज्योति से कमरे में प्रकाश हो जाता है। ईश्वर-कृपारूपी ज्योति से जन्म-जन्मांतर के पापों का अन्धकार हममें से निकल जायगा, भक्ति का प्रकाश फैल जायगा।

कुछ गृहस्थों ने एक बार श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना की, "भगवन्, सभी लोग कहते हैं कि आपको ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त है। कृपा करके हमें भी कभी ईश्वर का दर्शन करा दीजिए।"

श्री रामकृष्ण हंसकर बोले, "ईश्वर की इच्छा होगी तो अवश्य आप लोगों को दर्शन देंगे। आप लोग भी इसके लिए प्रयत्न करें। क्या मैं दूध को दुहकर, दही जमाकर, बिलोकर, मक्खन को अपने ही हाथ से आपके मुंह में भी डालूं ?"

हवा चलती रहे तो हमें पंखे की आवश्यकता नहीं रहती। हवा के बन्द होते ही हम पंखा झलने लगते हैं। ईश्वर की कृपा मिल जाने पर हम जप-तप-साधन छोड़ सकते हैं, किन्तु जबतक उसका अभाव है, हमें जप-तप-प्रार्थना की आवश्यकता रहती ही है।

अहंकार ही भगवान् की कृपा को प्राप्त करने में रुकावट डालता है। उस अहंकार को पूर्णतया हटा लो। यह कभी न भूलो कि ईश्वर ही सबकुछ कराता है। जबतक अहंकार को हटा न लोगे, ईश्वर तुमसे दूर ही रहेगा। उसकी कृपा तुम्हें कैसे मिलेगी ?

मिट्टी में खेलना और सारे शरीर में धूल लगा लेना बालक का स्वभाव है। मां की खुशी तो मैले बच्चे को उठाकर, नहला-धुलाकर, फिर उस स्वच्छ बच्चे को प्यार करने में होती

है। इसी प्रकार मनुष्य स्वभाव से गलतियां करता है। जगन्माता हमारे पापों को धो-धोकर हमें अवश्य पवित्र कर देगी। हम उसके बालक हैं। हम मां से डरें क्यों ? मां के प्रति प्यार ही हममें होना चाहिए। हममें मैल का नाम-निशान भी न रहेगा।

वत्स, मां को क्यों धोखा देना चाहते हो ? ईश्वर सचमुच ही तुम्हारी जननी है। जैसे अपनी मां को प्यार करते हो, ईश्वर को भी प्यार करो। अवश्य लाभ पाओगे। तुम्हारा शरीर और मन दोनों उज्ज्वल हो जायंगे। चित्त में उतनी ही प्रसन्नता और आनन्द का अनुभव करोगे, जितनी प्रसन्नता मां की गोद में बैठकर, उसके वात्सल्यमय मुख को देख कर, हंसता हुआ बच्चा अनुभव करता है। ○

२६ / भक्त की पहचान

चकमक पत्थर पर लोहा रगड़ने से अग्नि पैदा होती है। सैकड़ों वर्ष पानी में डूबे रहने पर भी पत्थर के अन्दर की अग्नि बनी ही रहती है, उसकी शक्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। सच्चे भक्त की भक्ति भी उसी प्रकार की होती है। उसकी दृढ़ भक्ति को वासनाएं डिगा नहीं पातीं। दुःख में भी वह अविचल रहता है। जिस प्रकार लोहे के स्पर्श से पत्थर से चिनगारियां निकलती हैं, उसी प्रकार भगवान् के नाम-श्रवण से भक्त के हृदय से चिनगारियां निकल पड़ती हैं।

संकट और दोषारोपण से मनुष्य की परीक्षा होती है। जिस प्रकार सोने की पहचान पत्थर पर रगड़कर की जाती है उसी प्रकार भक्त की परीक्षा संकटों द्वारा होती है। उस परीक्षा में सच्चा भक्त उत्तीर्ण हो जाता है।

इन्द्रिय-सुख के मोह को जीतने का उपाय परमेश्वर को स्मरण करना और उसीमें आनन्द-विभोर रहना है। ईश्वरोपासना के परम आनन्द में हम ऐहिक सुखभोग के तुच्छ आनन्द को भूल जायंगे। जिस मनुष्य को परमात्मा के सान्निध्य का अनुभव करने का आनंद मिला हो, वह उन शारीरिक सुख-भोगों के पीछे कभी नहीं जायगा, जो क्षण-भर को सुख देखकर फिर निरन्तर दुखी बना देते हैं। मिश्री का स्वाद लेने के बाद कंकड़ और मैल से भरी हुई शक्कर को कोई पसन्द नहीं करता। राजमहल में सुन्दर बिस्तर पर शयन करने के बाद बस्ती की गंदी चारपाई

पर किसी को नींद कैसे आ सकती है ? ब्रह्मानन्द के अनुभव के बाद भक्त का मन मदिरापान के पीछे क्यों जायगा।

जब कभी मन काम-वासनाओं के पीछे जाने लगे तो उसे रोककर ईश्वर के प्रति ले जाओ। इसका अभ्यास हो जाय तो कैसी भी आपत्ति हो, उस पर हम विजय पा सकते हैं। इस बात को कभी न भूलो कि परमेश्वर सदा तुम्हारे अति समीप खड़ा है, बिलकुल एकान्त में भी, जब और कोई तुम्हें देखता नहीं, वह तुम्हें देखता रहता है। इस बात का अनुभव हो जाये तो रुपयों की बहुत बड़ी थैली अथवा अप्सरा भी भक्त को प्रलोभन में नहीं डाल सकती।

भक्ति और पूजा में आडम्बर मत करो। वह व्यर्थ होता है। सच्ची आराधना तो एकान्त और मौन में होती है। झरना पहाड़ों से निकलकर, इधर-उधर से बहने के बाद, विशाल नदी का रूप धारण कर लेता है। भक्त का चित्त भी संकट और शंकाओं की रुकावटों को पार करके दृढ़ और गंभीर बन जाता है। भक्ति के आनन्द में उसके मन की चंचलता विलीन हो जाती है।

भक्त परमेश्वर का शिशु है। उसकी अश्रुधाराओं में ही उसकी शक्ति है। जब हरि का नाम सुनते ही हृदय पुलकित हो उठे और आंखों से आंसू बहने लगें तो समझ लो कि इसके बाद तुम्हारा और कोई जन्म नहीं, तुम्हारे लिए मोक्ष की प्राप्ति निश्चित है। ○

२७ अब भी झूठ और चोरी क्यों ?

हमें अब स्वतंत्रता मिल गई है। हमारा देश स्वतंत्र गणराज्य बन गया है। दुनिया में हमारा देश सम्मानित है। हमारे नेताओं के प्रति दूसरे देशवाले खूब आदर-भाव रखते हैं। यह सब होते हुए भी हम दीन बनते हैं, छल करने में भी पीछे नहीं रहते।

हम ऐसा क्यों समझ रहे हैं कि हम झूठ और चोरी के बर्ताव से ही जीवित रह सकते हैं ? जूठन खानेवालों के समान हमारा व्यवहार क्यों रहता है? भारतमाता के गौरव को भूलकर हम अपने को क्यों नीचे गिराते रहते हैं? इस प्रकार के विचारों से कई लोग दुखित रहते हैं।

ऐसे लोगों के लिए श्रीरामकृष्ण ने कई वर्ष पहले जो कहानी सुनाई थी, वह फिर से सुनाई जा सकती है :

"एक रोज जंगल में चरते हुए बकरे-बकरियों पर एक पूर्णगर्भा शेरनी ने आक्रमण किया। इतने जोर से उसने बकरियों पर प्रहार किया कि वहीं उसके पेट से शिशु का जन्म हो गया और शेरनी पीड़ा से मर गई। बच्चा जिंदा रहा और बकरियों के बच्चों के साथ पलने लगा। घास-पात खाते रहने से बकरियों का ही स्वभाव उसमें आ गया। उसे अपने स्वाभाविक गुण का अनुभव बिलकुल न हुआ।

"कुछ वर्ष बाद उसी बकरी के समूह पर किसी दूसरे शेर ने आक्रमण किया और बकरियों के साथ 'बकरी शेर' भी भागने लगा। आक्रमण करनेवाले शेर को बकरियों के बीच अपने

स्वजातीय को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पीछे जाकर उसे उठाने का प्रयत्न किया। 'बकरी शेर' बकरियों की तरह 'मे-मे' करने लगा। बड़ा शेर उसे जबर्दस्ती एक तालाब के पास ले गया और अपने तथा उस शिशु-शेर के प्रतिबिम्बों को दिखाकर समझाने लगा, 'देखो, हम दोनों एक ही जाति के हैं। तुम इतने कायर होकर बिलकुल बकरी की तरह क्यों भागते हो? डरो मत, यह लो, यह मांस खाओ।' बच्चे को पहले तो मांस भाया ही नहीं, किन्तु थोड़ी ही देर में स्वाद लग गया। स्वाभाविक रुचि से उसने और मांस मांगा। बस, तब से शेर के सभी गुण उसमें आने लगे।

"बड़े शेर ने अब उससे कहा, 'अब तुझे मालूम हो गया कि तू कौन है। इसलिए बकरियों के बीच में तेरा कोई काम नहीं। मेरे साथ चल।' "

हम भी अपनी वर्षों की दास-वृत्ति छोड़ दें। अपनी योग्यता को समझें। गरीबी में दुःख का अनुभव न करें। दुर्गुणों से ही आदमी नीच बनता है। गरीबी में शरमाने की कोई बात नहीं होती। गरीबी में भी हम अपने चरित्र को पवित्र रखें। छल-कपट की ओर बिलकुल न जायं। भारत माता के गौरव की खूब रक्षा करते रहें। ○

२८ / प्रार्थना

ईश्वर से ऐसी प्रार्थना मत करो कि मुझे यह वस्तु मिल जाय, वह नहीं। सबकुछ ईश्वर के ऊपर छोड़ दो। सभी शास्त्र यही बात बताते हैं, और यह उचित भी है; किन्तु मनुष्य-स्वभाव इसको मानने में कठिनाई का अनुभव करता है। यद्यपि हम लोग मुंह से तो यही कहते रहते हैं कि 'हे भगवान, सब चीज तेरी ही है, तेरी महिमा अपार है,' तथापि हृदय किसी-न-किसी खास वस्तु को ध्यान में रखकर उसे पाने के लिए ही प्रार्थना करता है।

ईश्वर की लीलाओं को हमारी बुद्धि कैसे समझ सकती है ? हमें किस प्रकार मालूम हो सकता है कि क्या चीज अच्छी है और क्या चीज बुरी ? इसलिए ईश्वर के ऊपर ही सबकुछ छोड़ने में हमारी भलाई है। फिर भी जैसे हम मनुष्य एक-दूसरे से बात करते हैं, वैसे ही यदि भगवान् को भी अपना सुख-दुःख सुनावें, तो इसमें कोई दोष नहीं। यही स्वाभाविक है, उचित है। पति-पत्नी जिस प्रकार आपस में दिल खोलकर बात करते हैं, उसी प्रकार प्रार्थना द्वारा हम अपने स्वामी भगवान् के साथ वार्तालाप कर सकते हैं। यदि हम दिन में कम-से-कम एक बार भी प्रार्थना द्वारा प्रभु के साथ बातें करें, खेलें और अपने हृदय की भावनाएं व्यक्त करें, तो हमारा मन पवित्र होगा, वाणी मीठी रहेगी। इसमें कोई शक नहीं।

किसी ने श्रीरामकृष्ण से पूछा, "प्रार्थना किस प्रकार की

होनी चाहिए, मौनपूर्वक अथवा उच्च स्वर-से ?"

श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, "जिसकी जैसी इच्छा हो, वह वैसी प्रार्थना कर सकता है। ईश्वर तो एक चींटी के भी चलने की आवाज सुनता है। बहुत ही धीरे-धीरे रोओ तो वह सुन तो लेता ही है।"

"क्या प्रार्थना से कोई लाभ होता है ?"

"हृदयपूर्वक हो तो प्रार्थना अवश्य लाभदायक होती है। मुंह से हम कहते रहें, 'हम तुम्हारी शरण आए हैं, तुम जो चाहो सो करो' और उसी समय मन किसी-न-किसी वस्तु के ध्यान में लगा रहे तो वैसी प्रार्थना ढोंग है। प्रार्थना करते समय अपने आपको धोखा मत दो। ईश्वर को झूठी बात मत सुनाओ। पवित्र विचारों के साथ प्रार्थना करो। तुम्हारी प्रार्थना वह अवश्य सुनेगा। ईश्वर तुम्हें बहुत ही प्यार करता है। अपने कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन करने के बाद सर्वस्व उसके ऊपर छोड़ दो। चिन्ता दूर करो।

"जबतक जहाज में दिशा-प्रदर्शक कांटा ठीक काम देता है चिन्ता की बात नहीं रहती। वह कांटा सदा ध्रुव की ओर मुंह किये रहता है। इसलिए दिशाओं की भूल नहीं होती। इसी प्रकार हमारा चित्त ईश्वर की ओर लगा रहे तो हमारी जीवन-नौका सुखपूर्वक पार लग जायगी।

"इस बात की चिन्ता न करो कि जैसे जन-साधारण मन्दिर में जाकर पूजा करके भक्ति और शान्ति पा लेते हैं, वैसे तुमसे नहीं बन पाता। ईश्वर से कहो, प्रार्थना करो, 'मैं तुम्हारा रूप समझ नहीं पाता, मुझे नहीं मालूम कि तुम निराकार हो या

साकार, किन्तु मेरे ऊपर दया करो।' ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेगा। ईश्वर के समान तुम्हारी चिन्ता करनेवाला दुनिया में दूसरा कोई है ही नहीं।

"वह हमेशा तुम्हारी रक्षा करता आया है। वह जानता है कि तुम्हारे लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा। वह अवश्य तुम्हें एक रोज दर्शन देगा। अन्तिम समय में भी दे सकता है। प्रार्थना कभी न छोड़ो। ईश्वर के समान तुम्हारे सुख-दुःख सुननेवाला कोई दूसरा मित्र नहीं मिल सकता। ईश्वर के साथ किये जाने-वाले वार्तालाप को ही प्रार्थना कहते हैं। सामान्य व्यक्ति के लिए मूक रहना असंभव है।" ○

२९ / अखण्ड दीप

लोग सोचते हैं कि दुनिया के कामकाज में छल-कपट के बिना गुजर नहीं हो सकती। उसी में लाभ है। धर्मोपदेशकों का दुनिया में कोई उपयोग नहीं; किन्तु इस प्रकार के विचारों से हम बंधनों से छूटकर मुक्ति की ओर नहीं जा सकते। सचाई और न्यायपूर्ण व्यवहार में ही सुख, संतोष और लाभ होता है। उसी में देश का कल्याण है। छल-कपट समाज के लिए विनाशकारी है। समाज के लिए जो विनाशकारी हो, वह हम सबके लिए भी बुरा ही है।

कुछ धीवरियां बाजार में मछलियां बेचकर गांव को लौट रही थीं। बीच रास्ते में पानी बरसने लगा और अन्धेरा भी होने लगा। वहां एक माली की झोंपड़ी थी। धीवरियों को चिन्तित देखकर माली ने उनसे कहा, "रात होने लगी है और वर्षा भी हो रही है। तुम लोगों का गांव दूर है, रात यहीं काट-कर सवेरे चली जाना।" माली भला था। धीवरियों ने उसकी बात मान ली। उन लोगों को माली की झोंपड़ी में बहुत कोशिश करने पर भी नींद न आई, क्योंकि उसके अन्दर कोने में माली की टोकरी में चमेली के फूल रखे थे। धीवरियों को चमेली की सुगन्ध जरा भी न भाई। उनमें से एक स्त्री उठ बैठी और बोली, "यह दुर्गन्ध तो बढ़ती ही जा रही है। इसे कैसे रोकें ?" उन्हें एक उपाय सूझा। अपनी मछलियों से भरी टोकरियों में कुछ पानी छिड़क कर उन्होंने उन्हें बिछौने के पास रख लिया।

मछलियों की दुर्गन्ध से फूलों की सुगंध दब गई और फिर धीवरियों को खूब अच्छी नींद आई।

सबकुछ आदत पर निर्भर है। अच्छी संगति और आदतें जिन्हें न मिली हों, उन्हें बुरे काम ही अच्छे लगते हैं। वे कुटिल मार्ग को ही अपनाने में व्यावहारिकता समझते हैं।

इस कलियुग में जो एकमात्र तपस्या की जा सकती है, वह है सच बोलना। इस एक तप को भी करने के लिए हम तैयार नहीं होते। व्यापारी लोग, कचहरियों के नौकर, सभी सच बोला करें। सत्य में ही बुद्धिमानी है। इसी से ईश्वर को भी पाया जा सकता है। व्यावहारिकता भी इसी में है।

विशेष त्योहारों के अवसर पर हम लोग घर में अखण्ड दीप जलाते हैं और उसे बुझने नहीं देते, क्योंकि यह माना जाता है कि अमुक समय तक अखण्ड दीप जलाने का संकल्प करके यदि उसे बीच में बुझ जाने दिया जाय तो कुटुम्ब में अनिष्ट का भय रहता है। ईश्वर का ध्यान भी एक अखंड दीप है। हम उसे हृदय-मंदिर में जलाकर कभी बुझने न दें। हम चाहे जो भी कामकाज करते रहें, इस बात का ध्यान न छोड़ें कि उस दीप में घृत की कमी न हो और बाती ठीक तरह से लगी रहे। इससे हमारे कामों में कोई रुकावट या विघ्न न पड़ेगा, उल्टे अधिक सफलता ही प्राप्त होगी। ○

३० / कमला का दर्पण

छोटी-सी कमला ने अपनी मां से कहा, "मां, तुमने मुझे जो आइना दिया है उसमें चेहरा ठीक नहीं दिखाई देता।"

मां ने कहा, "शीशा चिकना और मैला है, इसलिए उसमें चेहरा ठीक तरह से नहीं दीखता। लाओ, उसे साफ कर दूं।" मां ने आइने को पोंछ करके साफ कर दिया। अब बिटिया को उसमें अपना चेहरा साफ दिखाई दिया और वह खूब खुश हुई।

ध्यान में भगवान का दर्शन करने का रहस्य भी यही है। हम अपने हृदय को स्वच्छ रखें तो ईश्वर को देख पायंगे। राग-द्वेष आदि से मलिन हृदय में ईश्वर का रूप कभी नहीं देख सकते। एकदम स्वच्छ हृदयवाले श्रीरामकृष्ण तो भगवान का दर्शन पाकर आनन्द में मग्न हो जाते थे। उन्होंने दूसरों को भी यही उपदेश दिया। हम उनके उपदेश को समझकर लाभ उठावें।

तालाब के स्थिर पानी में तट के पेड़ों, आकाश, आदि सबके प्रतिबिम्ब साफ दीखते हैं। हवा से पानी जब विचलित होता है तो कुछ नहीं दीख पड़ता। यदि हम हृदय में काई जमने न दें, इच्छा, क्रोध और द्वेषरूपी आंधी से हृदय को बचाये रखें तो वहां ईश्वर साफ दिखाई देगा।

छोटी-छोटी इच्छाओं को पूरा करने में कोई हानि नहीं। हम उनकी पूर्ति से संतोष कर लें और इच्छाओं को बहुत तीव्र

न होने दें। बुद्धि से लोभ और मोह को रोक सकते हैं और हृदय को पवित्र रखकर उसमें भगवान् का स्वच्छ प्रतिबिम्ब देख सकते हैं।

संसार का जीवन एक बहुत ही गहरे कुएं के समान है। कोई बच्चा यदि उस कुएं में, एकदम किनारे खड़ा होकर नीचे झांके तो हम उसे अवश्य मना करेंगे। जीवन में कई खतरे हैं, जिनमें गिर पड़ने पर निकलना दुष्कर होता है।

किसीने पूछा, "क्रोध और लोभ हमसे छूटते ही नहीं। इसके लिए क्या किया जाय ?"

श्रीरामकृष्ण ने स्वभाव पर विजय पाने के लिए यह उपाय बताया, "यदि अपने मन से इच्छा-क्रोधादि को निकालना असंभव मालूम पड़े तो उनकी दिशाओं को बदलने का प्रयत्न करो। अपनी इच्छा को ईश्वर के प्रति लगाओ। ईश्वर को पाने में ही अपनी शक्ति का सद्व्यय करो। उसका दर्शन न मिले तो क्रोध भी उसके साथ करो। अपने आवेगों का इस प्रकार शमन करो।"

जब हमलोग बड़े-बड़े भयंकर जंगली जानवरों को काबू में कर लेते हैं तो मन को वश में करना भी संभव होना चाहिए। मन भी एक मस्त जानवर होता है। यदि हम व्यर्थ सोच-विचार-रूपी घने जंगल में मनरूपी दुष्ट जानवर को मनमाना फिरने दें तो उसे काबू में लाना बहुत मुश्किल हो जायगा। बुद्धिरूपी अंकुश से उसे रोकते रहना चाहिए।

आशा-पाशों को क्रमशः कम करते रहना चाहिए। उन्हें

बढ़ने दें तो बुद्धि का बढ़ना बन्द हो जायगा। हम खेत को बहुत बढ़ाना चाहते हैं तो फिजूल की घास, कांटे आदि निकाल दें, तभी धान्य के पौधे खूब बढ़ सकते हैं। बुद्धि की वृद्धि तभी हो सकती है जब हम उसमें रुकावट डालने वाले आशा-पाशों को हटाकर उन्हें कम करते जायं। ○

३१ / परोपदेश

कई लोग ऐसे होते हैं जो अपना सारा समय कीर्तन, हरिकथा और व्याख्यान आदि में व्यतीत करते हैं। ऐसे लोग शिक्षित भी होते हैं और जो काम करते हैं, अपने उद्देश्य के साथ ही करते हैं। किन्तु दूसरों को सुधारने में कोई तभी सफलता प्राप्त कर सकता है जबकि उसका अपना हृदय भक्ति से भरा हो। केवल वाक्-चातुरी से काम नहीं बनता।

"अलग-अलग धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार करने वालों के प्रति आपका क्या मत है ?" एक सज्जन ने श्रीरामकृष्ण से पूछा। इसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने कहा, "यदि कोई सौ आदमियों को दावत के लिए बुलाए, जबकि उसके पास अपना पेट भरने के लिए भी पूरा खाना न हो, तो उसके बारे में क्या कहा जा सकता है ? सिद्धांत के प्रचार करने वालों की भी यही स्थिति होती है। उनकी भावना जबतक उन्हीं के उद्धार के लिए पर्याप्त नहीं, तबतक भला वे दूसरों को क्या दे सकते हैं ?"

अपने हृदय में ईश्वर की स्थापना करके बाद में कोई धर्मोपदेश करना चाहे तो करे। जबतक कोई अपने हृदय से काम, क्रोधादि आवेगों को हटा नहीं पाता तबतक उसका दूसरों को वैराग्य और भक्ति का उपदेश देना कोई अर्थ नहीं रखता। इस तरह के उपदेश तो शून्य मन्दिर में घंटी बजाने और शंख-ध्वनि करने के समान हैं।

मनुष्य में अनेक दोष हो सकते हैं। यदि वह श्रद्धा और

भक्ति के साथ प्रभु की शरण में जाय तो दोष दूर हो जायंगे और तब वह पवित्र बनकर दूसरों को उपदेश दे सकेगा।

एक सज्जन थे, जो धर्मोपदेश खूब करते थे, किन्तु उनके निजी जीवन के बारे में तरह-तरह की बातें सुनने में आती थीं। श्रीरामकृष्ण उनके पास पहुंचे और बोले, "इस बात का स्पष्टीकरण कर दीजिए कि आप स्वयं आदर्श जीवन व्यतीत न करते हुए भी लोगों को कैसे आकर्षित कर लेते हैं?" सज्जन ने उत्तर दिया, "यह तो सच है कि मैं महा नीच हूं; किन्तु अपने ऊपर प्रभु की कृपादृष्टि होने के कारण मैं भी कुछ काम कर लेता हूं। यह वैसा ही है जैसे झाड़ू स्वयं मैली होने पर भी सफाई का साधन बन जाती है।"

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "यह सुनकर मैं निरुत्तर बन गया।"

हृदय में भक्तिभावना का उदय हो जाय तो सब दोष हट जाते हैं। भक्ति में सूर्य की किरण और गर्मी की तरह व्यापक शक्ति होती है। दूसरों के हृदय में भी वह अनायास पहुंच जाती है। ○

३२ / शंका छोड़ दो

इस बात की चिंता न करो कि अपने स्वभाव पर किस प्रकार विजय पाई जाय। यद्यपि कोयला एकदम काला होता है, तथा अग्नि के लगते ही उसका स्वाभाविक काला रंग मिट जाता है। ज्ञानाग्नि से तुम्हारे मन की कालिमा हट भी जायगी।

अपने मन को वश में रखकर उसमें मैल न जमने दें तो हम सबकुछ कर सकते हैं।

धोबी के धुले साफ कपड़े पर कोई भी रंग आसानी से चढ़ जाता है। अच्छी संगति और प्रयत्न से हम स्वच्छ मन को जैसा चाहें वैसा बना सकते हैं। जो लोग अंग्रेजी पढ़े-लिखे होते हैं, वे अंग्रेजी शब्दों से मिश्रित वाक्य बोलते हैं। जिन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान है, वे सदा बात-बात में संस्कृत के कुछ-न-कुछ उद्धरण सुनाते रहते हैं।

जिन्हें सुसंगति मिली हो वे कुमार्ग की ओर नहीं जायंगे। जो बुरी संगति में रहते हैं, उनका मन कुटिल दिशा में ही जाता है। उनके स्वभाव की बुराई बढ़ती रहती है।

हम अपने को स्वयं क्यों बिगाड़ें ? सचाई और भक्ति ईश्वर को पाने के मार्ग हैं। भक्ति के बिना जीने में कोई सार नहीं। ईश्वर को भूलें तो पतन निश्चित है।

किसी दूसरे को मारने के लिए तलवार, छुरी या बन्दूक चाहिए। अपने आपको मारने के लिए एक सूई भी काफी है। दूसरों के अज्ञान को दूर करने के लिए शास्त्रोपदेशों की आवश्य-

कता है, किन्तु अपने हृदय के अन्धकार को मिटाने के लिए तो छोटा-सा भक्तिमन्त्र ही काफी है।

विविध धर्मों की जड़ भक्ति ही है। भक्ति हो तो मनुष्य अपने धर्म का पालन करके लाभ उठा सकता है। भक्तिहीन व्यक्ति चाहे कितना ही पढ़ा-लिखा क्यों न हो, वह इतर धर्मों का अवलम्बन करके भी ज्ञान नहीं पा सकता।

जो गाय सामने रखे हुए चारे को शंका करके छोड़ देती है और खाती नहीं, वह दूध कम ही देगी। जो गाय बेखटके खूब खाती है, उसका दूध भी खूब होता है। शंकाशील बुद्धि से ज्ञान-दुग्ध की आशा नहीं रख सकते।

जब किसी मनुष्य को बहुत प्यास लगती है तो वह पानी को देखते ही उसे पीकर अपनी प्यास बुझा लेता है, यह नहीं सोचता है कि यह पानी गंदला है, कहीं और ढूंढ़ें। ईश्वर की कृपा के तृषातुर मनुष्य अपना धर्म छोड़कर और दूसरे धर्म को पकड़कर प्रभु के सामने नहीं जायंगे।

जिस तरह लोभी धन को पाना चाहता है, डूबता हुआ आदमी सांस के लिए तड़पता है, उसी तरह भक्त भगवान् को देखने के लिए व्याकुल रहता है।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "कुछ लोग 'अंधश्रद्धा' की खूब हंसी उड़ाते हैं। मुझे तो समझ में नहीं आता कि इस हंसी के क्या मानी हैं। श्रद्धा और भक्ति तो एक ही प्रकार की होती है। 'आंखोंवाली' और 'अंधी' ऐसी दो प्रकार की भक्तियों को मैं नहीं जानता। भक्ति के तो आंखें होती ही नहीं हैं।"

नास्तिकवाद से दुःख ही होता है। शंका छोड़ दीजिए। यह

ब्रह्मांड शून्य से अपने आप उत्पन्न नहीं हुआ। मनुष्य की चेतना-शक्ति, विचार-शक्ति कहां से आई है ? ईश्वर के अस्तित्व पर शंका मत कीजिए, ऐसा श्रीरामकृष्ण का उपदेश है। उनका कथन है, "नरक की कल्पना करके कांपिए नहीं। अपने पापकर्मों के लिए ईश्वर से क्षमा मांगिए। प्रभु से रक्षा के लिए प्रार्थना कीजिए। आपके सभी पाप दूर हो जायंगे।" ○

३३ / उपासना का सरल उपाय

एक बार परमहंस ने ब्रह्मसमाज के एक प्रमुख से कहा, "आप लोग उपासना करते समय बार-बार कहते हैं, 'हे ईश्वर, तुम्हीं ने इस ब्रह्माण्ड को रचा है। तुमने यह किया, वह किया, तुम्हारी महिमा अपार है।' मुझे इस प्रकार का ध्यान अस्वाभाविक प्रतीत होता है। अपने पिता की धन-दौलत, नौकर-चाकर, गाड़ी-घोड़ा और बाग-बगीचे को देखकर कोई भी पुत्र आस्चर्य-चकित नहीं होता। पिता का प्रेम भी उसे स्वाभाविक मालूम होता है। उस प्रेम में आश्चर्य का अनुभव नहीं होता।

"हम सभी परमेश्वर की सन्तान हैं। परमपिता का हमारे ऊपर स्नेह स्वाभाविक है। उसपर आश्चर्य प्रकट करने की क्या आवश्यकता है? व्यर्थ बातें करने में समय नष्ट न करके हमें ईश्वर के पास उसी प्रकार पहुंचना चाहिए जिस प्रकार पति के पास पत्नी जाती है, अथवा जिस प्रकार बालक मां के पास दौड़ता है। ईश्वर से किसी बात की मांग करो तो इसी ढंग से करो। उससे कोई चीज मांगनी हो तो निडर होकर आत्मीयता के साथ मांगो। डर के मारे यदि ईश्वर से दूर ही रहोगे तो उससे कैसे गले मिल सकोगे?"

यही भक्तिमार्ग का गूढ़ सूत्र है। भक्ति में अत्यधिक आश्चर्य, भय या विनय का प्रदर्शन नहीं होता। भक्ति के लक्षण तो धैर्य, स्नेह और श्रद्धा हैं। प्रारंभ में थोड़े संकोच का अनुभव हो सकता है, किन्तु भक्ति जब परिपक्व हो जाती है तब भक्त

ईश्वर को अपना समझकर उसके बहुत ही निकट पहुंच जाता है।

परमहंस के एक शिष्य की बूढ़ी मां उनके पास गई और कहने लगी, "मैं तो अब बूढ़ी हो गई हूं। संसार की चिन्ताएं छोड़कर मथुरा-वृन्दावन जाकर राधाकृष्ण की पूजा में शेष जीवन बिताना चाहती हूं।"

श्रीरामकृष्ण बुढ़िया के स्वभाव को खूब जानते थे। उससे बोले, "आप हरिद्वार जायं, काशी जायं, अथवा मथुरा जायं, आपका मन तो अपने पौत्र-पौत्री से जरा भी नहीं हट सकेगा। आप यही सोचती रहेंगी कि मालूम नहीं, अब बिटिया का बुखार उतरा कि नहीं, बहू उसकी देखभाल ठीक तरह से करती होगी या नहीं, इत्यादि। इसलिए आप एक काम करें। आप अपनी पोती को ही राधा समझा करें, घर-संसार में रहकर अपनी पोती से प्यार करते हुए यही खयाल आपके मन में रहे कि आप दिन-रात वृन्दावन की राधिका की चाकरी कर रही हैं। उस नन्हीं बिटिया को राधा ही समझकर नहलाइए-धुलाइए, अच्छे वस्त्र पहनाइए और उसके माथे में बिन्दी लगाइए। इस तरह आपका मन घर-गृहस्थी में रहकर भी राधाकृष्ण में लगा रहेगा और आपको वानप्रस्थ का फल घर-बैठे मिल जायगा।"

जिस किसी व्यक्ति से आप प्रेम करते हों, चाहे वह आपकी प्रेयसी पत्नी हो, अथवा मित्र या माता-पिता, उस व्यक्ति में भगवान् का ही स्वरूप देखें। ईश्वरोपासना का यह बड़ा ही सरल उपाय है। इस उपाय से सभी का जीवन पुनीत हो सकता है। ○

३४ / कहां है गोपाल ?

अनन्तराम गूजर खुशीराम के घर गया। आधी रात का समय था। अनन्तराम ने खुशीराम के दरवाजे को खटखटाया और आवाज भी दी। खुशीराम ने बाहर आकर पूछा, "क्यों भाई, क्या बात है ? आधी रात को क्यों जगा रहे हो ?" अनन्तराम बोला, "जरा-सी आग दे दो, बीड़ी सुलगाने के लिए।" खुशीराम हंस पड़ा और बोला, "तुम्हारे हाथ में लालटेन है, फिर भी बीड़ी सुलगाने मेरे पास आए हो ! यह भी खूब रही !"

इस कथा द्वारा श्रीरामकृष्ण हमें समझाना चाहते हैं कि हम सब अनन्तराम गूजर की ही तरह अपने अन्दर निरन्तर बसनेवाले परमेश्वर को देखे बिना उसे इधर-उधर ढूंढ़ते फिरते हैं। परमहंस अपनी छाती पर हाथ रखकर कहते हैं, "प्रभु का निवास यहां पर है, इस बात को कोई समझ ले तो उसे ईश्वर सारे ब्रह्माण्ड में फैला हुआ दिखाई दे। यदि कोई अपने अन्दर ईश्वर को न देख पाये तो उसे और कहीं भी उसके दर्शन नहीं हो सकते। प्रभु प्रत्येक के हृदय में विराजमान है। इस तथ्य को न समझकर यदि हम सोचते रहें कि कहीं दूर आकाश में स्थित है तो हमारा हृदय अज्ञानान्धकार से छाया हुआ ही रहेगा। यदि ज्ञान-दीप से उस अन्धकार को हटाकर देखें तो हमें हृदय के अन्दर वास करनेवाला भगवान् साफ-साफ दिखाई देगा।"

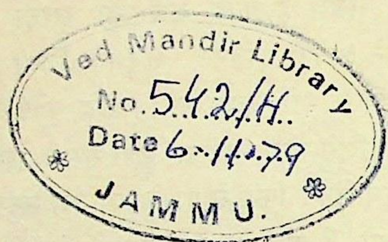
दूसरों की बातें सुनकर यह मान लेना कि मैंने भगवान्

को अपने अन्दर देख लिया है, कोई अर्थ नहीं रखता। यदि किसी ने सचमुच अपने अन्दर ईश्वर का अनुभव किया हो तो वह अपने जीवन के ढंग को भी बदल लेगा। यदि कोई व्यक्ति अपने भरे बटुए को, जिसे उसने खोया हुआ समझ रखा था, अपनी वास्कट की जेब में ही फिर से पा ले तो उस मनुष्य को कितनी प्रसन्नता होगी ? कोई माता सपने में देखती है कि उसका बच्चा खो गया है और वह उसे सब जगह ढूंढ़ती फिरती है, किन्तु जब एकाएक जगने पर वह देखती है कि उसका बच्चा सुखपूर्वक उसके पास लेटा हुआ सो रहा है, तो वह कितनी शांति का अनुभव करती है ? भगवान् को अपने ही अन्दर पाकर मनुष्य को वैसी ही खुशी का अनुभव होना चाहिए।

एक दिन यशोदामाई ने राधा के पास जाकर पूछा, "गोपाल सुबह का घर से निकला हुआ अभी तक नहीं लौटा। क्या तुम्हें मालूम है कि वह कहां गया है ?"

राधा लेटी हुई थी। वह उठ बैठी और यशोदा से बोली, "मां, चिन्ता मत करो। आंखें मूंदकर कृष्ण को याद करो। वह एकदम तुम्हारे पास आ पहुंचेगा।" यशोदा ने वैसा ही किया और गोपाल ने उन्हें तुरन्त दर्शन दे दिए। यशोदा ने राधा की भक्ति की खूब सराहना की और उससे याचना की कि मुझे भी अपनी भक्ति का थोड़ा अंश दे दे।

हम सब राधा और यशोदामैया की तरह कृष्ण गोपाल का सर्वत्र दर्शन कर सकते हैं, केवल हममें उन्हीं की तरह प्रभु के प्रति प्रेम होना चाहिए। कठोपनिषद् में कहा गया है कि यदि हृदय में उमंग हो, तीव्र इच्छा हो तो भगवान् अवश्य दर्शन देगा।○


Ved Mandir Library
No. 542/H.
Date 6-11-79
JAMMU.

'मंडल' का

धर्म-अध्यात्म-साहित्य

□□

गीता माता
भगवद्गीता
भागवत धर्म (भाग १, २)
विष्णुसहस्रनाम
अनासक्ति योग
गीता-बोध
श्रीअरविन्द का जीवन-दर्शन
बुद्ध-वाणी
भगवान हमारा मित्र
गोस्वामी तुलसीदास के सुबोध दोहे
कबीरसाहब की सुबोध साखियां
रहीम के सुबोध दोहे
गिरिधर की सुबोध कुंडलियां
गीता की महिमा
भारत सावित्री (भाग १, २, ३)
उपनिषदों का बोध
रामकृष्ण उपनिषद

□□

